प्रेम पत्र तीसरा भाग जो कि पहली मई सन् १८९५ ई० से ३० एप्रिल सन् १८९६ ई० तक समाप्त हुआ उसके बचनों का

सूची पत्र

बचन संख्या	सुरखी यानी खुलासा मज़मून बचन	पृष्ठ संख्या
१	राधास्वामी मत के मानने वालों और उनकी जुगत के मुवाफ़िक़ अभ्यास करने वालों का सहज में, बग़ैर कष्ट और कलेश और मेहनत और मशक़्क़त के, पूरा उद्धार मुमकिन है, जो वे राधास्वामी दयाल की शरण दृढ़ करें और उनके हुक्म के मुवाफ़िक़ अपनी रहनी और रोज़मर्रा का अभ्यास दुरुस्त करें।	१
२	वक़्त के संत सतगुरु और साध की ज़रूरत, वास्ते हासिल होने सच्चे उद्धार के, और उनकी महिमा और पिछली टेकों का निषेध।	१७
३	वर्णन हाल सुरत के उतार और चढ़ाव का, और गुरु स्वरूप की महिमा और भजन की तरक़्क़ी का जतन, और संसारी व्यवहार और परमार्थी बर्तावे की दुरुस्ती।	२७
४	शब्द की महिमा और हर जगह रचना में उसकी कार्रवाई का वर्णन, और यह कि उसी के वसीले से जीव का सच्चा और पूरा उद्धार, संत सतगुरु की दया से मुमकिन है। और किसी तरह से धुर पद में पहुँचना और जन्म-मरण से सच्चा छुटकारा मुमकिन नहीं है।	५०
	बचन महात्माओं के	६८
५	वर्णन हाल सच्चे खोजी और परमार्थी, और भी माया और उसकी रचना और घेर का, और ज़रूरत सतगुरु और उनके सत-संग की, और महिमा कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल की, जिनके चरणों में सब को प्रीति और प्रतीत लानी चाहिये, और बिना जिनकी मेहर और दया के, किसी का कुछ काम नहीं बन सकता, और हाल उपदेश-कर्ताओं का, और नसीहत उनको और कुल्ल उपदेशियों यानी राधास्वामी मत के सतसंगियों को।	८३

बचन संख्या	सुरखी यानी ख़ुलासा मज़मून बचन	पृष्ठ संख्या
१५	परमार्थियों को तीन क़ायदों पर ख्याल रखने से अभ्यास में विघ्न कम वाक़ै होंगे, और परमार्थ की तरक़्क़ी दिन २ होती जावेगी।	२९५
१६	सतसंगियों को मौज और रज़ा पर क़ायम रहना चाहियें, और दुख-सुख की हालतों में भरोसा दया का रख कर परमार्थ में ढीले और रूखे-फीके नहीं होना चाहिये।	३०३
१७	वर्णन सच्चे प्रेमी और परमार्थियों की हालत और रहनी और पकड़ और व्यौहार का, और यह कि ऐसी हालत और रहनी कैसे आवे।	३१७
१८	राधास्वामी मत और सुरत-शब्द अभ्यास की महिमा और वर्णन बड़-भागता उन जीवों की, जो प्रीति और प्रतीत सहित अभ्यास कर रहे हैं।	३३६
१९	वर्णन हाल मन की तरंगों और ख़्यालों का, जो कि कर्म-भर्म के सूक्ष्म रूप हैं, और यह कि जब तक इनकी कमी और सफ़ाई न होगी, तब तक मन और सुरत दुरुस्ती से अभ्यास में नहीं लगेंगे और प्रेम की तरक़्क़ी नहीं होगी, और जतन काटने उन ख़्यालों और तरंगों और कर्मों का।	३४७
२०	वर्णन भूल और भर्म और जीव की निर्बलता का, और यह कि बिना मेहर और दया कुल्ल मालिक और संत सतगुरु के, और अभ्यास उस करनी के, कि जो वे बतावें, इसका उलट कर निज घर में पहुँचना यानी सच्चा उद्धार मुमकिन नहीं है।	३७२
२१	वर्णन इस बात का, कि सच्ची मुक्ति क्या है और कौन जुगत से और कहां पहुँचने पर यह हासिल हो सकती है।	३८८
२२	सच्चा मत और सच्चा पंथ क्या है ? और उसकी कार्रवाई क्या है ? और किस तौर से होती है और उससे क्या फ़ायदा हासिल होगा ?	३९७
२३	असली सत्त में जो अमर, अजर और परमानन्द स्वरूप है, पता और भेद लेकर, प्यार और भाव लाना और बढ़ाना चाहिये, तब असत्य यानी माया के देश और जन्म-मरण से छुटकारा होगा।	४०४
२४	तीन बातें हमेशा सुमिरना यानी याद रखनी चाहियें और तीन बातें विसरना यानी भूलना चाहियें ॥	४१६

बचन संख्या	सुरखी यानी खुलासा मज़मून बचन	पृष्ठ संख्या
२५	वर्णन उस जुगत का, कि जिससे परमार्थी को संसार का दुख-सुख कम व्यापे, बल्कि बिल्कुल न व्यापे, और अभ्यास में थोड़ा-बहुत रस और आनन्द बराबर मिलता रहे, और आहिस्ते २ बढ़ता जावे।	४३०
२६	राधास्वामी मत वालों को अपने उद्धार की निस्बत किसी तरह का शक और संदेह मन में नहीं लाना चाहिये, क्योंकि जो कोई राधास्वामी दयाल की शरण लेकर, सुरत-शब्द का अभ्यास करेगा, उसका पूरा उद्धार एक, दो, तीन, हद चार जनमों में ज़रूर हो जावेगा।	४४७
२७	सच्चे परमार्थी को, वास्ते अपनी तरक़्क़ी के, सात बातों की सम्हाल रखनी ज़रूरी है।	४५५

राधास्वामी मौज से, प्रेम पत्र जारी।
दृढ़ विश्वास होय चरण में, और प्रीति गाढ़ी॥
सुमिरन, ध्यान और भजन में, नित नया आनंद पाय।
सतसंगी सब उमँग उमँग, राधास्वामी महिमा गाय॥

राधास्वामी दयाल की दया राधास्वामी सहाय

प्रेमपत्र राधास्वामी

तीसरा भाग

बचन १

राधास्वामी मत के मानने वालों और उनकी जुगत के मुवाफ़िक़ अभ्यास करने वालों का सहज में, बग़ैर कष्ट और क्लेश और मेहनत और मशक़्क़त के, पूरा उद्धार मुमकिन है, जो वे राधास्वामी दयाल की सरन दृढ़ करें और उनके हुक्म के मुवाफ़िक़ अपनी रहनी और रोज़मर्रा का अभ्यास दुरुस्त करें।

१—जो कि अनेक पदार्थ और भोग इस रचना में मालिक ने पैदा किये, वे दया करके अपने प्रेमी और भक्त जनों के वास्ते रचे, ताकि वे उसकी क़ुदरत की कार्रवाई को

देखें और दया की परख कर के मगन होकर शुकराना बजा लावें और उन भोगों और पदार्थों के साथ मुवाफ़िक़ हुक्म मालिक के और साथ उन क़ायदों के (जोकि उसने संत सतगुरु रूप धारन करके वास्ते समझौती जीवों के जारी फ़रमाये) होशियारी से बर्ताव करें ताकि उन भोगों का ज़हर असर न करे यानी नशा अहंकार और ग़फ़लत का पैदा करके उनको भूल और भरम में न ड़ाले और सच्चे मालिक से बे-मुख न करे।

२—इस दुनिया में जो कार्रवाई कि जीव कर रहे हैं, वह तीन क़िस्म की हैं—एक स्वार्थ, दूसरी स्वार्थ-परमार्थ, तीसरी निर्मल यानी ख़ालिस परमार्थ।

३—स्वार्थ उस कार्रवाई को कहते हैं कि जो वास्ते अपने गुज़ारे के, इस दुनियाँ में, और परिवरिश और सम्हाल अपनी देह और कुटुम्ब-परिवार वग़ैरा की, और सम्हाल और तरक़्क़ी दुनिया के भोग बिलास और नामवरी की, की जावे।

४—स्वार्थ-परमार्थ उस कार्रवाई को कहते हैं कि जो वास्ते प्राप्ति सुख और मान-बड़ाई के, इस लोक में ख़्वाह परलोक में, चाहे इस जनम में ख़्वाह आइन्दा के जनम में, या वास्ते राज़ी और ख़ुश करने किसी देवता के या हासिल करने किसी क़िस्म की सिद्धि और शक्ति वग़ैरा के या

वास्ते प्राप्ति स्वर्ग या बैकुण्ठ या मुक्ति या ब्रह्म-लोक वग़ैरा के, की जावे।

५—निर्मल परमार्थ उसको कहते हैं कि जो भक्त और अंतर-अभ्यास की कमाई प्रेम सहित इस मतलब से की जावे कि जिस से मन और सुरत (जोकि अब माया के घेर में फँसे हुए हैं) दिन २ उस घेरे से निकलते जावें और त्रिकुटी के परे, सुरत, मन से न्यारी होकर, सच्चे मालिक के चरनों में पहुँच कर उसके दर्शन का विलास देखे और परम आनन्द के भंडार में पहुँच कर परम शान्ति को प्राप्त होवे और काल-क्लेश और जनम-मरन के दुखों से क़तई छुटकारा हो जावे, यानी पिंड और ब्रह्मांड के पार चढ़ कर कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल के चरनों में पहुँचे और उस भक्ति और प्रेम की कार्रवाई में सिवाय प्राप्ति दर्शन अपने प्रीतम कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल के, और कोई चाह किसी क़िस्म की न रहे और दिन २ उस मालिक के चरनों में प्रीत और प्रतीत बढ़ती रहे।

६—कसरत से जीव स्वार्थ की कार्रवाई में लगे हैं और असली स्वार्थ-परमार्थ भी बहुत थोड़े जीव समझ-बूझ के साथ करते हैं और निर्मल परमार्थ कोई बिरले जीव, जिन पर ख़ास दया कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल की है, कमाते हैं।

७—स्वार्थी जीव हमेशा नीची-ऊँची जोनों में भरमते रहेंगे और स्वार्थ-परमार्थ वाले ऊँचे देशों में सुख और आनंद पावेंगे और कोई २ ब्रह्म पद में पहुँचेंगे, लेकिन सच्चे और कुल्ल-मालिक का दर्शन सिर्फ़ निर्मल परमार्थियों को मिलेगा और उन्हीं का सच्चा छुटकारा जनम-मरन और काल-क्लेश से होवेगा।

८—निर्मल परमार्थ बग़ैर मदद सच्चे और पूरे गुरू के हासिल नहीं हो सकता है। इस वास्ते कुल्ल जीवों को जो सच्चे मालिक की भक्ति करना चाहते हैं, लाज़िम और मुनासिब है कि पहले खोज सतगुरु का करें और उनसे मिल कर भेद निज धाम और उसके रास्ते का और जुगत चलने की दरयाफ़्त करके अभ्यास शुरू करें और जिस क़दर बन सके, उनका सतसंग करके कर्म, भर्म और संशय वग़ैरा अपने दूर करावें, क्योंकि जब तक भरम और संशय मन में रहे आवेंगे, तब तक अभ्यास दुरुस्ती से नहीं बनेगा और न सतगुरु और सच्चे मालिक राधास्वामी दयाल के चरनों में प्रेम जागेगा। और बिना प्रेम के रास्ता आसानी से तै नहीं होगा और न अभ्यास में रस और आनंद जैसा कि चाहिये, प्राप्त होगा।

९—सतगुरु के बचन सुन कर और उनका कोई दिन संग करके जीवों को वह क़ायदा कि जिस तरह उनको संसार

में बर्तना चाहिये, मालूम होवेगा और निर्मल भक्ति की रीति भी वे ही सिखावेंगे कि जिससे गृहस्थ में रह कर इस तौर से परमार्थ की कमाई कर सकें कि माया के जाल में न फँसें और इन्द्रियों के भोगों में बंधन न होवे और दिन-दिन देह और दुनिया से, अंतर में, न्यारे होते जावें और कुल्ल-मालिक के चरणों में प्रीत-प्रतीत बढ़ती जावे और दर्शन का शौक़ तेज़ होता रहे।

१०—जो सच्चे परमार्थी हैं, वही सतगुरु के सतसंग में ठहरेंगे और उनके उपदेश के मुवाफ़िक कार्रवाई करके अपना कारज आहिस्ता २ बनावेंगे। और जिनके मन में दुनिया और उसके सामान का भाव और प्यार ज़बर है, उनसे संत सतगुरु का उपदेश कम माना जावेगा और उनकी जुगत यानी सुरत-शब्द की कमाई भी दुरुस्ती से नहीं बन पड़ेगी। लेकिन जो उनके चित्त में सच्ची अभिलाषा राधास्वामी धाम में पहुँचने की है तो उनका मन भी आहिस्ता २ निर्मल होकर, उसमें प्रीत सच्चे मालिक के चरनों की ज़बर हो जावेगी और फिर संसार के भोग उनको अपनी तरफ़ खैंच और बाँध नहीं सकेंगे।

११—जो आसान जुगत जीवों के छुटकारे के वास्ते, बग़ैर छोड़ने गृहस्थ आश्रम और उद्यम के, कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल ने जीवों पर अति दया करके इस वक़्त में जारी

फ़रमाई है, उसका शुकराना किसी तरह अदा नहीं हो सक्ता। वह जुगत (सुरत-शब्द योग की) ऐसी असर वाली है कि जो कोई थोड़ी अहतियात के साथ बर्ताव करे तो उस पर संसार और उसके भोगों का असर बहुत कम पहुँचेगा, बल्कि दिन २ निर्मल होकर कोई काल में अपने निज धाम में पहुँच जावेगा और दुनिया का भी भोग, ब-निस्बत दुनियादारों के, ज़्यादा रस और स्वाद के साथ उसको हासिल होवेगा और उसका ज़हर उस पर असर नहीं करेगा। गुरू नानक ने कहा है "पूरा सतगुरु पाइया और पूरी पाई जुक्ति, हसंदियाँ खिलंदियाँ खवंदियाँ पिवंदियाँ, बिच्चे पाई मुक्त" यानी गृहस्थ में रह कर और गृहस्थ आश्रम के सर्व व्यवहार और भोगों में अहतियात के साथ बर्तते हुये संतों की जुगत की कमाई करने से सच्ची मुक्ति हासिल हो सक्ती है।

१२—उस अहतियात की थोड़ी शरह बतौर हिदायत अभ्यासियों के इस जगह लिखी जाती है और वह यह है कि फ़िज़ूल कामना यानी इच्छा संसार और उसके मान-बड़ाई और भोगों की मन में न उठावें, क्योंकि इच्छा के उठाने से जतन यानी कर्म करना पड़ेगा और जो वह जतन दुरुस्त बैठा यानी इच्छा पूरण हुई, तो उसके भोगों में ज़रूर बंधन पैदा होगा और मन उसके रस में लिपट कर मलीन होगा, और जो इच्छा पूरन न हुई तो दुख और क्लेश प्राप्त

होगा और उस हालत में किसी से विरोध और किसी से सरोध अपनी मूर्खता से पैदा करके मुफ़्त भार अपने सिर पर चढ़ावेगा कि जो इसके अभ्यास में निहायत दरजे का ख़लल डाल कर भक्ति और प्रेम को सुखा देगा।

१३—भोग तीन क़िस्म के हैं—इच्छित, अनिच्छित और पर-इच्छित। इच्छित उसको कहते हैं कि किसी काम या पदार्थ या इन्द्रियों के भोगों की यह शख़्स चाह उठावे और जो वह चाह तेज़ है तो ज़रूर जतन करावेगी और जतन करने में कष्ट और क्लेश भी ज़रूर होगा। और जो वह जतन पूरा न हुआ तो दूना दुख होगा और जो पूरा हुआ तो उसकी चाह के पदार्थ या भोग प्राप्त होने पर उसमें ज़रूर आसक्ति होगी। और विशेष करके भोगने में भी आख़िर को तकलीफ़ पैदा होगी। और जो किसी ने सिर्फ़ इच्छा उठाई और उसका अपने अंतर में विस्तार किया, लेकिन फिर समझ-बूझ कर उसके पूरा करने के वास्ते जतन नहीं किया, तो भी जब कभी वह भोग मौज से प्राप्त होगा, तब मगन होकर और दया समझ कर उसमें ज़्यादा शौक़ के साथ बर्तेगा और पकड़ भी उसमें ज़बर होगी। फिर वही नुक़सान जो कि जतन सिद्ध होने पर वाक़ै होगा। इस सूरत में भी आयद होगा। इस सबब से समझना चाहिये कि इच्छा उठाने में, चाहे उसके पूरा करने के वास्ते जतन किया जावे या नहीं,

हर तरह नुक़सान है और राधास्वामी मत के सतसंगी को मुनासिब और लाज़िम है कि किसी काम या पदार्थ के वास्ते फ़िज़ूल और ना-मुनासिब इच्छा न उठावे। अन-इच्छित उसको कहते हैं कि कोई पदार्थ या भोग बग़ैर इस जीव की ख़्वाहिश या चाह के मौज से अनासुर्त प्राप्त होवे। अगर वह ना-मुनासिब और ना-जायज़ नहीं है, तो उसको अहतियात के साथ यानी थोड़ा भोगने या काम में लाने में कोई हर्ज नहीं है। पर-इच्छित उसको कहते हैं कि जो कोई अपना रिश्तेदार या दोस्त या सतसंगी भाई, भाव और प्यार के साथ, कोई पदार्थ या भोग इस शख़्स के वास्ते तैयार करके सनमुख रक्खे या उसके पास भेजे तो जो वह ना-मुनासिब और ना-जायज़ नहीं है तो उसी अहतियात के साथ जैसा कि अन-इच्छित भोग के वास्ते ऊपर लिखा गया है, उसमें बर्ताव करे। और जो वह मामूली भोग नहीं है तो बाद उसके भोगने के थोड़ी देर भजन या ध्यान करना भी मुनासिब होगा, ताकि उसका असर उलटा पैदा न होवे।

१४—फ़िज़ूल इच्छा से मतलब यह है कि जिस बात या काम या चीज़ या पदार्थ की ज़रूरत, वास्ते अपने औसत दरजे के गुज़ारे के, नहीं है, उसके वास्ते इच्छा उठाना। ऐसी ख़्वाहिश परमार्थी को, हिर्स करके या मान-बड़ाई के वास्ते, उठाना, मना है। बल्कि जो इच्छा ज़रूरी

काम या पदार्थ वग़ैरा की उठावे और उस की प्राप्ति के निमित्त जतन करे, तो वह राधास्वामी दयाल की मौज के आसरे और उनकी दया के भरोसे पर करना चाहिए। और जो इत्तिफ़ाक़ से वह जतन सिद्ध न होवे, तो समझना चाहिए कि इसी में कुछ मसलहत है। और जैसे बने तैसे ऐसी मौज के साथ मुआफ़क़त करनी मुनासिब है।

१५—जितने में कि इस जीव का गुज़ारा औसत दर्जे पर अपनी हैसियत के मुवाफ़िक़ ब-ख़ूबी होवे, उस क़दर चाह उठानी और उसके निमित्त मौज के आसरे जतन करने में कोई नुक़सान नहीं होगा। पर उस में इस क़दर अहतियात ज़रूर है कि अपने मतलब के पूरा करने के वास्ते किसी को नुक़सान पहुँचाना या उसकी हक़-तलफ़ी करना नहीं चाहिए और इस क़दर सामान की प्राप्ति के वास्ते राधास्वामी दयाल के चरनों में जब-तब प्रार्थना करने में भी दोष नहीं है जैसा कि इस कड़ी में कहा है :—
"मालिक एता माँगहूँ, जामें कुटुम्ब समाय, मैं भी भूखा ना रहूँ, साध न भूखा जाय"।

१६—और मालूम होवे कि राधास्वामी मत के सत-संगी को यह भी हुक्म है कि जिस क़दर आमदनी उसकी होवे, उसमें से दसवाँ अंश यानी दसवाँ हिस्सा मालिक के नाम पर निकाले और उसको वास्ते ख़र्च ख़ैरात और

परमार्थी कामों के अलेहदा रक्खे और जो इस क़दर आमदनी न होवे कि दसवाँ हिस्सा आसानी से निकाल सके तो सोलहवाँ हिस्सा यानी फ़ी-रुपया एक आना ज़रूर मालिक के नाम का अलहेदा करे और परमार्थी कामों में ख़र्च करता रहे। इसमें उसकी कमाई सुफल होगी और जो धन कि बाद निकालने परमार्थी हिस्से के, वास्ते उसके घर के ख़र्च के बचेगा, वह शुद्ध हो जावेगा और परमार्थी ख़र्च के निभाने में उसको में आसानी रहेगी और जब फ़ुरसत और मौक़ा पाकर वास्ते दर्शन या सतसंग के सफ़र करना पड़े तो सफ़र खर्च भी इसी यानी परमार्थी रुपये में से दे सक्ता है।

१७—जो कोई सतसंगी सच्चे मन से कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल की सरन लेवेगा और अपने परमार्थी और स्वाथी कामों को उनकी मौज और दया के आसरे करेगा, और जो जुगत अभ्यास की उसकी बताई गई है, जैसे भजन और स्वरूप का ध्यान और नाम का सुमिरन और पोथी का पाठ और सतसंग वग़ैरा, नेम से दो बार, तीन बार या चार बार थोड़ा-बहुत विरह और प्रेम-अंग लेकर रोज़मर्रा बिला नाग़ा अपनी फ़ुरसत के मुवाफ़िक़ करेगा और ऊपर के लिखे हुए क़ायदे और अहतियात के साथ अपनी रहनी दुरस्त करेगा और संसारी व्यवहार

और अपने उद्यम के कारोबार में जहाँ तक बने, सचौटी के साथ बर्ताव करेगा और फ़िज़ूल वक़्त संसारियों के संग फ़िज़ूल बात-चीत में ख़र्च नहीं करेगा, तो राधास्वामी दयाल सब तरह से उसकी रक्षा और सहायता अपनी दया से करेंगे और अभ्यास में भी उसको थोड़ा-बहुत रस देते जावेंगे और दिन-दिन उसकी प्रीत और प्रतीत अपने चरणों में और विरह और उमँग अभ्यास और भक्ति के व्यवहार में बढ़ाते जावेंगे और आहिस्ता आहिस्ता एक दिन उसको माया के घेर से निकाल कर निज धाम में पहुँचावेंगे जैसा कि उनके हुकम से जो कि इन कड़ियों में लिखा है, ज़ाहिर है।

वह तो रूप दिखा कर छोड़ूँ ।
तुम जल्दी क्यों करो पुकारा ॥
तुम्हरी चिन्ता मैं मन धारी ।
तुम अचिन्त रह धरो पियारा ॥
संशय छोड़ करो दृढ़ प्रीती ।
और परतीत सँवारा ॥
यह करनी मैं आप कराऊँ ।
और पहुँचाऊँ धुर दरबारा ॥
राधास्वामी कहत सुनाई ।
जब जब जैसी मौज विचारा ॥

१८—कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल ने फ़रमाया है कि जो जीव को सच्ची दीनता उनके चरणों में आ जावे

और वह उनकी सरन दृढ़ करे यानी उनकी पनाह और ओट में कार्रवाई परमार्थ की शुरू करे तो उसका मन किसी क़दर चंचल भी रहे ओर अभ्यास भी जैसा चाहिये पूरा २ न बन आवे, तो भी राधास्वामी दयाल अपनी दया से उसका बेड़ा पार करेंगे यानी अपना बल देकर उससे जो करनी ज़रूर और मुनासिब होगी, देर-अबेर आप करा लेंगे और उसका कारज जैसा मुनासिब होगा, आप बनावेंगे।

१६—दीनता से मतलब सिर्फ़ यही नहीं है कि आदाब बजा लावे, बल्कि इसके अर्थ यह हैं कि सच्ची ग़रज़मन्दी वास्ते अपने जीव के कल्यान के और नरकों और दुक्खों से बचाव के लिए राधास्वामी दयाल के चरनों में लेकर भक्ति करे। और ग़रज़मन्दी का स्वरूप यह है कि जैसे बीमार, डाक्टर या हकीम की तवज्जह और दवा का मुहताज है, और नौकरी का चाहने वाला हाकिम की मेहरबानी और तवज्जह का, और निरधन, वक़्त भारी ज़रूरत के, धन के लिये साहूकार का।

२०—अब जीवों को समझना चाहिये कि किस क़दर भारी दया कुल्ल मालिक ने उनके ऊपर इस वक़्त में फ़रमाई है कि निहायत सहज तौर से उनके उद्धार का रास्ता जारी किया है और बग़ैर अलेहदा करने घरबार

और रोज़गार से उनको परम पद बख़्शिश करता है। पर शर्त यह है कि वे सच्ची चाह लेकर जिस क़दर बन सके थोड़ा-बहुत अभ्यास संतों की जुगती का, दुरुस्ती के साथ करें और अपना व्यवहार संसार में, और अपनी रहनी परमार्थ में, मुवाफ़िक़ उन क़ायदों के जिनका ज़िकर ऊपर लिखा गया है, दुरुस्त करें और चरनों में प्रीति और प्रतीत बढ़ाते रहें।

२१—ऐसे जीवों का स्वार्थ और परमार्थ यानी दुनिया और दीन, राधास्वामी दयाल अपनी मेहर और दया से आप सँवारेंगे, यानी दुनिया में भी उनकी सम्हाल और रक्षा फ़रमावेंगे और जो कुछ सामान उसका मुनासिब है, बख़्शेंगे, और परमार्थ में अपने चरनों की प्रीत और प्रतीत का दान देकर उसको बढ़ाते रहेंगे, और ऐसी दया उन जीवों के संग रहेगी कि संसार के भोगों की गिरफ़्तारी और बन्धन नहीं होगा और मन और सुरत उनके दिन-दिन निर्मल होकर चरनों में लौलीन रहेंगे और अन्त को चरनों में बासा देवेंगे और बिना उनकी माँग के अपनी तरफ़ से परमार्थ की करनी जिसमें उनके जीव का कारज पूरा बन जावे, अपनी दया का बल देकर उनसे करा लेवेंगे जैसा कि इन कड़ियों में हुक्म है :—

अन धन और संतान भोग रस ।
जगत भोग और मिला जोग रस ।।
पर किरपा सतगुरु अस रहई ।
मोह न व्यापे जग नहिं फँसई ।।
रहे सुरत निर्मल गुरु साथा ।
शब्द मिले रहे चरनन माथा ।।
अपनी दया से गुरु दियो दाना ।
सेवक तो कछु माँग न जाना ।।
नाम अनाम पदारथ न्यारा ।
सो सतगुरु दीना कर प्यारा ।।

२२—अब ख़्याल करो कि किस क़दर भारी दया जीवों पर कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल ने फ़रमाई है, और किस क़दर आसान जुगती कि जो लड़का, जवान और बूढ़ा और औरत और मर्द सहज जिसका अभ्यास कर सकते हैं, जारी फ़रमाई। सिर्फ़ सच्ची लगन यानी सच्चा शौक़ या प्रेम राधास्वामी दयाल के चरणों में दरकार है। उसी की दिन २ तरक़्क़ी होती रहेगी और उसी से एक दिन पूरा कारज बन जावेगा और जो जीव कि थोड़ा-बहुत शौक़ लेकर उनके सतसंग में आवेगा, उसको ऐसी लगन वे अपनी दया से आप बख़्शेंगे और थोड़ी-बहुत करनी करा कर उसको आप बढ़ाते जावेंगे और एक दिन कुल्ल-मालिक यानी अपने धाम में पहुँचा देंगे और दुनिया की भी सब कैफ़ियत दिखला देंगे।

२३—इस भारी दया का शुकराना कौन अदा कर सक्ता है, क्योंकि पिछले वक़्तों में ब-सबब जारी होने अष्टाङ्ग योग यानी प्राणायाम के (जो कि गृहस्थी से और ख़ास कर औरतों से मुतलक़ नहीं बन सक्ता और विरक्तों से भी जिसका दुरुस्ती से बन पड़ना मुशकिल है) किसी गृहस्थी जीव का उद्धार नहीं हुआ, और विरक्त भी थक कर रह गये। ओर अब दोनों का सहज में कारज बनना मुमकिन है, जो वे राधास्वामी दयाल की सरन में आ जावें और थोड़े-बहुत शौक़ और प्रेम के साथ जैसा-तैसा उनकी जुगत के मुवाफ़िक़ अभ्यास शुरू कर देवें।

२४—जो कुछ कि ऊपर लिखा गया, वह आम सतसंगियों के वास्ते हैं। लेकिन जो कोई सतसंगी कि तेज़ शौक़ वाला है और सच्चे हृदय से चाहता है कि इसी जनम में उसको जल्वा सच्चे मालिक के दर्शन का नज़र आवे और जल्द उसके जीव का पूरा उद्धार हो जावे, उसको चाहिये कि संसार और उसके भोगों से सच्ची नफ़रत यानी उदासीनता लावे और तन, मन और इन्द्रिय और धन और संतान में आसक्ति कम करे और जगत के पदार्थों की चाह दूर करे और सतगुरू और राधास्वामी दयाल के चरनों में गहरी प्रीत और प्रतीत करे और जो जुगत कि बतलाई जावे, उसको प्रेम और उमँग के साथ कमावे, तो सतगुरु

राधास्वामी दयाल उसको प्रेम की दात देकर और उसको दिन २ बढ़ा कर जल्द अपने चरनों में खींचेंगे और दिन-दिन सहारा देकर एक दिन अपने दर्शनों का परम आनन्द बख़्शेंगे ।

२५—मालूम होवे कि राधास्वामी मत में मुख्यता तीन बातों की है । पहले पूरे सतगुरु, दूसरे शब्द यानी ध्वन्यात्मक नाम और तीहरे सतसंग अंतर और बाहर का, यानी बाहर से सतगुरु और उनकी बानी और प्रेमी जन का संग और अंतर में शब्द का संग । बग़ैर प्राप्ति सतगुरु के, कुछ काम नहीं बन सक्ता, क्योंकि सच्ची लगन और सच्चा प्रेम बग़ैर उनके संग और उनकी मदद के कभी हासिल नहीं हो सक्ता और न शब्द का भेद और किसी से मिल सक्ता है । उनके संग स्थूल बंधन जगत के और कर्म काटे जावेंगे और संशय और भर्म दूर होवेंगे और नाक़िस कर्म और कुसंग से बचाव होगा और अन्तर में शब्द यानी नाम के अभ्यासी से झीने कर्म और बन्धन चित्त के काटे जावेंगे और दिन-दिन घाट बदलता जावेगा, यानी मन और सुरत ऊँचे की तरफ़ चढ़ते जावेंगे और रस और आनन्द पाकर प्रीति और प्रतीत बढ़ती जावेगी और दिन-दिन अभ्यास में तरक़्क़ी होकर एक दिन काम बन जावेगा ।

बचन २

वक़्त के संत सतगुरु और साध की ज़रूरत वास्ते हासिल होने सच्चे उद्धार के, और उन की महिमा और पिछली टेकों का निषेध।

१—संत और सतगुरु उनको कहते हैं जो धुर पद तक यानी सत्त पुरुष राधास्वामी देश तक पहुँचे हैं, और साध गुरु उनको कहते हैं जो संतों के दसवें द्वार तक पहुँचे हैं और धुर पद में पहुँचने का यतन कर रहे हैं, और साध या सतसंगी उनको कहते हैं कि जो कुछ रास्ता तै कर चुके हैं और प्रेम पूर्वक साधना कर रहे हैं और दसवें द्वार और सत्त लोक में पहुँचनहार हैं।

२—जो कोई अपना सच्चा और पूरा उद्धार चाहे वह जब तक कि अभ्यास करके सत्तलोक और राधास्वामी धाम में न पहुँचेगा, तब तक पूरा काज नहीं बनेगा, यानी जनम-मरन और देहियों के दुख-सुख से छुटकारा नहीं होगा।

३—यह अंतरमुख अभ्यास और चढ़ाई मन और सुरत की बग़ैर संतों की जुगत यानी सुरत-शब्द मार्ग के इस समय में ख़ास कर, मुमकिन नहीं है, क्योंकि प्राणों का साधन बहुत कठित है और हर एक से दुरुस्ती से बनना उसका ना-मुमकिन है और फिर भी उसके वसीले धुर पद में पहुँचना किसी तरह नही हो सक्ता। और सिवाय

इसके और जो कोई साधन हैं, वे प्राण पुरुष के स्थान ने नीचे रह जाते हैं।

४—इस वास्ते लाज़िम और ज़रूर है कि संतों की जुगत यानी सुरत-शब्द योग का, जिसकी तरकीब राधास्वामी दयाल ने अब बहुत सहज और निर्विघ्न कर दी है, अभ्यास किया जावे और इसका भेद सिर्फ़ संत सतगुरु या साधगुरु या उनके मेली सतसंगी से मालूम हो सक़ा है और राधास्वामी मत में यह अभ्यास आम तौर पर जारी है।

५—अब सब जीवों को, जो कि अपना सच्चा कल्यान चाहें और जनम-मरन और चौरासी के चक्कर से बचना चाहें, चाहिए कि संत सतगुरु या साधगुरू और जब तक यह न मिलें तो उनके मेली सतसंगी से जो प्रेम सहित साधना कर रहा है और रास्ता तै करता जाता है, मिल कर उपदेश सुरत-शब्द मार्ग का और भेद धुर धाम का लेकर, जिस क़दर बन सके, उसकी कमाई शुरू कर दें। रफ़्ता २ उनको (जो उनकी लगन सच्ची और तेज़ है) संत सतगुरु भी मिल जावेंगे और अपनी मेहर और दया से उनका कारज सहज में बना देंगे।

६—जब तक कि संत सतगुरु मिलें, तब तक उन अभ्यासियों की जिन्होंने संतों के सतसंगी से उपदेश लिया

है, सफ़ाई और पिंड में चढ़ाई होती जावेगी। लेकिन पिंड के पार चढ़ना बग़ैर मदद और दया संत सतगुरु के मुमकिन नहीं है। सो जब उनका अधिकार इस क़दर बढ़ जावेगा, तब संत सतगुरु भी ज़रूर मिल जावेंगे और आगे को उनका रास्ता चलावेंगे। उन जीवों को चाहिये कि संतों के मेली सतसंगी से, उसको प्रेमी भक्त समझ कर प्रीत भाव से बर्ताव करें और उसका और संतों की बानी का जिस क़दर बने, संग करते रहें और उसके संग अभ्यास करके रास्ता तै करते रहें।

७—संत सतगुरु इस दुनिया में बहुत दुर्लभ रतन हैं और जिस किसी को वे मिल जावें और थोड़ी-बहुत अपनी दया से अपनी पहिचान उसको देवें, उसी जीव को बड़ा बड़-भागी समझना चाहिये। निज रूप यानी शब्द स्वरूप से वे हर वक़्त हर एक के घट में निकट मौजूद हैं। पर जब तक कि वे बाहर नर स्वरूप से न मिलें, तब तक पूरा पूरा भेद नहीं मिल सकता है और न बग़ैर थोड़े-बहुत अभ्यास के उनके निज स्वरूप की पहिचान हो सक्ती है। इस वास्ते सच्चे परमार्थियों को खोज संत सतगुरु की बहुत ज़रूर है।

८----जब से कि जीव संत मत में उपदेश लेकर शामिल होवे, तब से उसको लाज़िम है कि कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल की टेक बाँधे और जिस क़दर कि

पिछली टेकें होवें, उनको छोड़ देवे और जिस जिस का कि इष्ट और भाव मन में पहिले से धरा होवे, उन सब को शाखा जानकर राधास्वामी के चरनों में समा देवे, यानी मूल की धारना इख़्तियार करे और शाखाओं में न अटके, क्योंकि जब तक ऐसा नहीं करेगा, तब तक उसकी निर्मल प्रीत और प्रतीत राधास्वामी दयाल के चरणों में नहीं आवेगी और न अन्तर-अभ्यास में मदद मिलेगी।

९—इसी तरह सुरत-शब्द मार्ग की महिमा (जिसकी चाल जान की धार पर सवार होकर चलती है और जान की धार सब धारों पर भारी है) समझ कर शौक़ और ज़ौक़ के साथ उसका अभ्यास शुरू करे और जितने अभ्यास कि दुनिया में जारी हैं, उनको ओछा और कर्म-धर्म बग़ैरा को भरम समझ कर त्याग देवे और उनमें किसी तरह का भाव और उनसे किसी तरह की आशा न रक्खे, नहीं तो सुरत-शब्द का अभ्यास जैसा कि चाहिये दुरुस्ती से नहीं बनेगा और संशय और भरम मन में जब-तब पैदा होकर उसकी कार्रवाई में विघ्न डालते रहेंगे।

१०—संतों का मत प्रेमा भक्ती का है और यह भक्ति अंतर में सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल के चरणों में सच्चे मन से करनी चाहिये यानी उनके चरणों का प्रेम सहित ध्यान और उनके शब्द का उमंग सहित श्रवन करना चाहिये

और जो संत सतगुरु मिल जावें तो बाहर से उनकी भक्ति, प्रेम और उमंग के साथ करनी चाहिये यानी चित्त से उनके बचन सुनना और समझना और दृष्टि जोड़ कर उनके स्वरूप का दर्शन करना और तन-मन धन से जिस क़दर बन सके, उनकी और उनके भक्तों की सेवा करना।

११—सतगुरु और उनके भक्तों की सेवा ऐन राधास्वामी दयाल की भक्ति समझनी चाहिये, क्योंकि इस भक्ति करने का मतलब यही है कि कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु (जो असल में उन्हीं का रूप हैं) प्रसन्न होकर प्रेम दान देवें, यानी मन और सुरत को जो तन ओर इन्द्रिय और संसार के भोगों में (जो जड़ पदार्थ हैं) अटके हुए हैं, उनसे आहिस्ता २ न्यारा करके, घट में निज धाम की तरफ़ चढ़ाते हुए एक दिन राधास्वामी के चरणों में पहुँचावें।

१२—यही यानी संत सतगुरु की भक्ति कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल को मंज़ूर और क़बूल है। और किसी की भक्ति पसंद नहीं और न उससे वह फ़ायदा और फल जो कि ऊपर लिखा गया, हासिल हो सक्ता है।

१३—और जिस किसी को संत सतगुरु अभी नहीं मिले हैं और वह उनके मिलने की आशा में उनके मेली सतसंगी और सतसंगिनों से भाव और प्यार और थोड़ी-

बहुत उनकी सेवा करे, तो वह भी संत सतगुरु और राधास्वामी दयाल की भक्ति में दाख़िल होगी, क्योंकि उस शख़्स का मतलब इस कार्रवाई से यही होगा कि राधास्वामी दयाल अंतर में दया करें और अपने चरणों में खींचें और संत सतगुरु का भी दर्शन और सतसंग प्राप्त होवे। फिर यह भक्ति ख़ुद राधास्वामी दयाल की ही सेवा और भक्ति में शामिल होगी। इसका भी फल रफ़्ता २ यही मिलेगा कि अंतर शब्द और स्वरूप में भाव और प्यार बढ़ता जावेगा।

१४—मालूम होवे कि राधास्वामी दयाल कुल्ल-मालिक और सर्व समर्थ घट २ में मौजूद यानी हाज़िर और नाज़िर हैं, और जो कोई उनके दर्शन और निज धाम की प्राप्ति के निमित्त अंतर और बाहर सेवा कर रहा है, उसको वे आप देख रहे हैं और उसकी निष्काम भक्ति का फल यानी प्रेम की तरक़्क़ी आप देते हैं, और उसके मन और सुरत का आहिस्ता २ सिमटाव और चढ़ाव करते हुये अपने चरणों में लगाते हैं और थोड़ा-बहुत रस और आनन्द अभ्यास का आप अपनी दया से देते जाते हैं, क्योंकि जिस क़दर कार्रवाई मेहर और दया की होती है, वह सब निज रूप से, जो कि हर एक के घट-घट में मौजूद यानी अंग संग है, की जाती है। इस वास्ते हर

एक को राधास्वामी दयाल के चरणों में प्रीति और प्रतीत दिन २ बढ़ाना और अंतर में सेवा यानी अभ्यास दुरुस्ती से करना, वास्ते प्राप्ति मेहर और दया रोज़ अफ़ज़ूँ के, मुनासिब और ज़रूर है।

१५—राधास्वामी के प्रेमी भक्तों को किसी दूसरे में परमार्थी भाव, उनके बराबर या उनसे ज़्यादा किसी हालत में नहीं रखना चाहिये। जितने पद कि राधास्वामी धाम से नीचे हैं, उनके धनी का अदब करना दुरुस्त है, पर मन और शीश राधास्वामी के चरणों में अर्पण करना चाहिये। जैसे स्त्री ख़ातिर और ज़रूरत पड़े तो सेवा सब की यानी अपने मां-बाप और कुटुम्ब और अपने पति के कुटुम्ब की करती है, लेकिन अपनी निज प्रीत और सर्व कारज के पूरण करने की आशा अपने पति में रखती है, और वक़्त पर उसी का संग देती है, बल्कि अपने पुत्रों से भी मामूल से ज़्यादा सरोकार नहीं रखती है, इसी तरह राधास्वामी के इष्ट वालों के हिरदे में सिवाय राधास्वामी दयाल के दूसरे का भाव और प्यार (सिवाय मामूली तौर के) नहीं होना चाहिये, नहीं तो भक्ति में भारी नुक़सान पैदा होगा। चाहे स्वार्थ, चाहे परमार्थ, दोनों कामों में भरोसा और दया की आशा राधास्वामी दयाल के चरणों में रखना चाहिये।

१६—हर हालत और हर काम में राधास्वामी के

शुकर की करना समझ विचार ।
सुक्ख दुख देंगे हिकमत धार ।। ३ ।।
ताड़ और मार करें सोइ प्यार ।
भोग सब इन्द्री रोग निहार ।। ४ ।।
कहूँ क्या दम दम शुकर गुज़ार ।
बिना उन और न करने हार ।। ५ ।।
दुखी चित से न हो दुख लार ।
सुखी होना नहीं सुख जार ।। ६ ।।
बिसारो मत उन्हें हर बार ।
दुक्ख और सुक्ख रहो उन धार ।। ७ ।।
गुरू और शब्द यह दोउ मीत ।
नहीं कोई और इन धर चीत ।। ८ ।।
यही सतपुर्ष यही करतार ।
लगावें तोहि इक दिन पार ।। ९ ।।
बिना उन कोई नहीं संसार ।
देओ मन सूरत उन पर वार ।।१०।।
करें वह नित्त तेरी सार ।
तेरे तन मन के हैं रखवार ।।११।।
शुकर कर राख हिरदे धार ।
मिटावें दुक्ख सबही झाड़ ।।१२।।
करें क्या मन तेरा नाकार ।
नहीं तू छोड़ता विष धार ।।१३।।
भोग में गिरे बारम्बार ।
न माने कहन उनकी सार ।।१४।।
इसी से मिले तुझको दंड ।
नहीं तू मानता मति मंद ।।१५।।

सहो अब पड़े जैसी आय।
करो फ़र्याद गुरू से जाय ॥१६॥
पकड़ फिर उनहीं को तू धाय।
करेंगे वोही तेरी सहाय ॥१७॥
बिना उन और नहीं दरबार।
रहो उन चरण में हुशियार ॥१८॥
गुनह तुम कीये दिन और रात।
गुरू की कुछ न मानी बात ॥१९॥
इसी से भोगते दुख घात।
बचावेंगे वही फिर तात ॥२०॥
रहो राधास्वामी के तुम साथ।
लगे फिर शब्द अगम तुम हाथ ॥२१॥

बचन ३

वर्णन हाल सुरत के उतार और चढ़ाव का और गुरु स्वरूप की महिमा और भजन की तरक़्क़ी का जतन और संसारी व्यवहार और परमार्थी बर्तावे की दुरुस्ती

१—मालूम हो कि सुरत का उतार असल में निज धाम यानी राधास्वामी दयाल के चरणों से हुआ है और पिंड के नाके पर यानी छठे चक्र के मुक़ाम पर कि जो अंदर की तरफ़ दोनों आँखों के मध्य में वाक़ै है, इसकी

निज बैठक है और वहीं से दोनों नेत्रों में धार आई और वहाँ ठहर कर कार्रवाई देह और दुनिया की जारी हुई और देह और कुटुम्ब और भोगों और पदार्थों में बंधन और आसक्ति हो गई कि जिसके सबब से दुख-सुख सहना पड़ता है, यानी जहाँ मन की प्रीत है या जहाँ इसका महत्व है या जिसको अपना समझा है, वहीं बंधन पैदा हो गया और उसकी हालत बदलने में इसकी भी हालत बदलती है यानी दुख-सुख का चक्कर चलता रहता है।

२—जब तक कि निज घर का भेद पाकर और जुगत चलने की दरियाफ़्त करके चलना यानी उलटना शुरू नहीं किया जावेगा, और दृढ़ आशा पहुँचने निज धाम की बाँधी नहीं जावेगी, तब तक यह गिरफ़्तारी सुरत और मन की जिसका ज़िकर ऊपर हुआ, नहीं छूटेगी, और जनम-मरन भी बारम्बार देह धर कर जारी रहेगा। यह भेद और जुगत पहुँचने निज धाम की संत सतगुरु या साध गुरू से मालूम हो सक्ती है। पर शर्त यह है कि यह शख़्स सच्चे मन से यानी सच्चे शौक़ के साथ अभ्यास शुरू करे, तब उलटना मन और सुरत का और चढ़ाई निज घर की तरफ़ मुमकिन है।

३—मन और इन्द्रियाँ अपने असली सुभाव और पुरानी आदत और स्वभाव के मुवाफ़िक़ इस कार्रवाई में

विघ्न-कारक होंगे। सो उनके विघ्नों के हटाने और घटाने का जतन यही है कि संसारी तरंगें और इच्छा को, जिस क़दर मुमकिन होवे, रोके यानी फ़िज़ूल और बग़ैर ज़रूरत के अपनी सुरत की धार को इन्द्रिय द्वारे से बाहर की तरफ़ न बहावे, और इन्द्रियों के भोगों में आसक्ति कम करता जावे, तब अभ्यास किसी क़दर दुरुस्ती के साथ बन पड़ेगा और कुछ रस भी अंतर में मिलेगा और फिर वही रस, जो अभ्यास नेम से जारी रहा, दिन-दिन बढ़ता जावेगा।

४—जो अभ्यासी को सतगुरु के चरणों में किसी क़दर परमार्थी भाव और प्यार है और वक़्त ध्यान और भजन के उनके स्वरूप को अगुवा करके अभ्यास शुरू करेगा, तो अंतर में मन और इन्द्रियों का ज़ोर किसी क़दर घटता नज़र आवेगा और प्रेम और उमँग की थोड़ी-बहुत तरक़्क़ी होती जावेगी।

५—कुल्ल-मालिक जो कि घट २ में अंतरजामी है, सच्चे सेवक को अपने चरणों में प्रीत और प्रतीत दिलाने और उसके बढ़ाने के निमित्त, मौज से जब-तब गुरु स्वरूप धारन करके, अंतर में वक़्त अभ्यास या स्वप्न अवस्था के (जब कि मन और सुरत का सिमटाव अंदर की तरफ़ होता है और देह और इन्द्रियों की तरफ़ झुकाव नहीं रहता) दर्शन देता है। यह दर्शनी स्वरूप हाड़-माँस का

नहीं है, बल्कि चैतन्य यानी रूहानी है और सेवक को पहिचान कराने के मतलब से धारण किया जाता है। नहीं तो वह कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल अरूप तौर से भी अंतर में दया फ़रमा सक्ते हैं। पर सेवक को उसकी पहिचान नहीं होगी और इस सबब से उनकी महिमा और मेहर और दया की ख़बर नहीं पड़ेगी।

६—जब कि कभी २ सेवक को ऐसे दर्शन अपने घट में मिल गये, तो उसी स्वरूप का जब अभ्यास के समय या और किसी वक़्त ध्यान या ख़्याल करेगा, तब ज़रूर थोड़ा-बहुत प्रेम जागेगा और मन और इन्द्रिय भी उस वक़्त नीचे पड़ जावेंगे यानी अभ्यास में विघ्न नहीं डालेंगे।

७—इसी सबब से सतगुरु स्वरूप और उसके ध्यान की महिमा और फ़ायदा ज़बर है कि मालिक अन्तरजामी सेवक पर दया करने के वास्ते और उसकी प्रीत और प्रतीत बढ़ाने के लिये, आप उस स्वरूप को धारन करके घट में दर्शन देता है और यह स्वरूप सेवक के साथ जहाँ तक कि रूप-रंग-रेखा है, सूक्षम से सूक्षम होता हुआ संग रहेगा और अंतर में मदद देगा, और फिर यही स्वरूप, अरूप की भी पहिचान कराता जावेगा। इस वास्ते हर एक प्रेमी अभ्यासी को चाहिये कि जब कभी ऐसे दर्शन अंतर में वक़्त अभ्यास या सुपने में मिलें, तो उनको दर्शन मालिक का

समझ कर उस स्वरूप में प्रीत और भाव लावे। यह दर्शन आसानी से या जब जी चाहे तब नहीं मिलते हैं, बल्कि किसी कदर ऊँचे देश में, जब मन और सुरत सिमट कर वक़्त अभ्यास या सोने के वहाँ पहुँचें, तब मौज से प्राप्त होते हैं और इसी को ख़ास निशान राधास्वामी दयाल की दया का समझना चाहिये।

८—यह दस्तूर आम है कि जिस किसी ने जो कोई सूरत या चीज़ देखी है, वह जब उसका ख़्याल करे वह सूरत थोड़ी-बहुत उसकी आँखों में आ जाती है, लेकिन सतगुरु स्वरूप का ख़्याल इस तौर से जब चाहे तब नहीं आता है। सबब इसका यह है कि आम सूरतों का जब कोई आदमी ख़्याल करता है तो उसके मन या आँखों में अक्स या छाया नज़र आ जाती है, लेकिन सतगुरु स्वरुप का जब दर्शन होता है, वह ऊँचे देश में असली या सच्चा होता है और जब-कभी होता है, तब राधास्वामी दयाल की दया और मेहर से होता है, वास्ते बढ़ाने प्रीत और प्रतीत सेवक के।

९—लेकिन इस क़दर समझना चाहिये कि जब तक सेवक को बाहर सतगुरु के स्वरुप में भाव और प्यार न होगा और वह अंतर स्वरुप की महिमा न जानेगा, तब तक मालिक अंतरजामी गुरु स्वरुप में दर्शन बहुत कम देवेंगे।

यानी बाज़े लोग इस किस्म के हैं कि उनके मन में विद्या और बुद्धि के सबब से स्वरूप में भाव नहीं आता और उसको महदूद (हद्द वाला) और अल्पज्ञ और ओछा समझ कर ऐसा ख़्याल करते हैं कि मालिक तो अरूप और अपार है, वह स्वरूप-धारी कैसे हो सक्ता है? सो जब कभी उनको इत्तिफ़ाक़ से ऐसा दर्शन भी (उनके मन की हालत की जाँच की नज़र से) मिल जाता है, तो उनको उसमें मुतलक़ भाव नहीं आता और उसको ख़्वाब-ओ-ख़्याल समझते हैं। ऐसे लोगों को मालिक अंतरजामी गुरु स्वरूप में दर्शन नहीं देते हैं। और जो कि अरूप की उनको जाँच और पहिचान, जब तक कि सुरत उनकी ज़्यादा ऊँचे देश में न पहुँचे, नहीं आ सक्ती, इस वास्ते वे इस क़िस्म की दया से अर्से तक ख़ाली रहते हैं और मन और इन्द्रियों के विघ्न भी उनको ज़्यादा सताते रहते हैं।

१०—इन लोगों को इस बात की समझ अच्छी तरह नहीं आती कि आदि स्वरूप (जहाँ से रूप-रंग-रेखा खड़े हुए) उस कुल्ल-मालिक ने ही धारन किया और फिर वही आकार नीचे की रचना में कमी-बेशी के साथ उतरता आया और वह आदि स्वरूप ऐसा ही अपार है जैसा कि अरूपी स्वरूप, बल्कि नीचे के दरजों में भी स्वरूप ऐसा ही अपार है कि जिस का कोई अन्दाज़ और

हिसाब नहीं कर सक्ता, लेकिन अफ़सोस यह है कि यह लोग अपनी ओछी समझ के मुआफ़िक़, स्वरूप के लफ़्ज़ और नाम को हमेशा हद्द दार और ओछा समझते हैं। सबब इसका यह है कि इनकी नज़र स्थूल रचना में बँधी हुई है और सूक्ष्म से सूक्ष्म रचना का इनको अनुमान नहीं होता। इस वास्ते यह शुरू से अरूप की तरफ़ दौड़ते हैं और हाल यह है कि जब तक रूपवान रचना की हद्द के पार न जावेंगे, इनको उस अरूप का, जिनकी कि यह महिमा समझते हैं, कभी दर्शन प्राप्त नहीं हो सकते। और इस नादानी का इनको यह फल मिलता है कि प्रेम और उमँग से जो कि रास्ते के जल्दी काटने वाले और अभ्यास में रस और आनन्द प्राप्त कराने वाले हैं, ख़ाली रहते हैं। और अभ्यास में मन और इन्द्रियों के विघ्नों से झटके खाते रहते हैं। और इस सबब से चाल भी इन की सुस्त रहती है और रुखा-फीकापन हमेशा इन के मन और सुरत पर थोड़ा-बहुत छाया रहता है और जब-तब रस न मिलने की शिकायत करते रहते हैं और कभी इनकी २ प्रीत-प्रतीत भी डिगमिग हो जाती है।

११—एक भारी ख़राबी ऐसे अभ्यासियों में यह है कि वे अक्सर अपना बल लेकर अभ्यास करते हैं और अपने वैराग वग़ैरा का ज़्यादा भरोसा रखते हैं, और स्वरूप

के प्रेमियों को अक्सर ओछा देखते हैं, और अपने से, अभ्यास और वैराग में उनको कम ख़्याल करते हैं। और हाल यह है कि प्रेमियों को थोड़े अभ्यास में रस और आनन्द बहुत मिल जाता है, और गुरु स्वरूप को अगुवा रखने से उनके मन और इन्द्रिय किसी क़िस्म का विघ्न नहीं डालते। और वे पहले वाले लोग हरचन्द ज़्यादा अभ्यास करते नज़र आते हैं और अपना बल लेकर मन और इन्द्रियों से हर रोज़ जूझते हैं, मगर फिर भी उनको प्रेमियों के बराबर रस नहीं मिलता और जब २ मौज से रस मिलता है, तो किसी क़दर उसका अहंकार भी उनके मन में आ जाता है।

१२—लेकिन जो भाग से इन लोंगों को सतगुरु का सतसंग प्राप्त होता रहा, तो इनकी समझ भी आहिस्ता आहिस्ता बदलती जावेगी, और कोई दिन के अभ्यास के बाद, जब उनकी सुरत सिमट कर किसी क़दर ऊँचे देश में चढ़ने लगेगी, तब गुरु स्वरुप की महिमा उनके चित्त में समाती जावेगी और फिर वेही प्रेमियों के मुवाफ़िक़ अभ्यास में थोड़ी-बहुत गुरु स्वरूप की मदद लेकर चलने लगेंगे और फिर उनका रास्ता भी आसानी से तै होता जावेगा। इन लोगों का ब-मुक़ाबले प्रेमी अभ्यासियों के, जो विवेक अंग वाले अभ्यासी कहा जावे तो यह कहना दुरुस्त है।

१३—खुलासा यह है कि चाहे कोई प्रेम अंग लेकर

चले या विवेक और वैराग अंग पर ज़ोर देकर रास्ता तै करना शुरू करे, दोनों को पिंड देश से आहिस्ता आहिस्ता न्यारे होकर अपने निज धाम की तरफ़ चलना और चढ़ना ज़रूर है। क्योंकि जब तक कि सुरत, माया के घेर के पार न जावेगी, तब तक काम पूरा नहीं बनेगा यानी जब तक कि सत्त पुरुष राधास्वामी दयाल के धाम में न पहुँचेगी, तब तक निर्भय और निःचिन्त नहीं हो सक्ती, और न परम आनन्द प्राप्त हो सकता है। और वहीं पहुँच कर जनम-मरन और काल के क्लेश से सच्चा छुटकारा होगा।

१४—इस वास्ते कुल्ल परमार्थी जीवों को, जो अपना सच्चा उद्धार चाहते हैं और जिन को जीते-जी अपनी भक्ति और अभ्यास का थोड़ा-बहुत फल देखते चलना मंज़ूर है, तो उनको चाहिये कि सतगुरु खोज कर, उनका सतसंग भाव और प्रीत के साथ करें और संशय और भर्म दूर करके सुरत-शब्द मार्ग का उपदेश लेकर, उमंग और प्रेम के साथ उसकी कमाई करें, और सत्त पुरुष राधास्वामी दयाल की सरन दृढ़ कर के और उनकी मेहर और दया का आसरा और भरोसा रख कर रास्ता तै करना शुरू करें और प्रीत और प्रतीत चरनों में बढ़ाते जावें। तब दिन-दिन उनको अभ्यास में थोड़ा-बहुत रस मिलता जावेगा और आहिस्ता२ तरक़्क़ी करके वे एक दिन राधास्वामी दयाल की दया से

धुर धाम में पहुँच कर परम और अमर आनन्द को प्राप्त होंगे।

१५—प्रेमी अभ्यासियों को इस क़दर जता देना मुनासिब मालूम होता है कि अभ्यास के समय चाहे उनको दर्शन गुरु स्वरूप का प्रत्यक्ष होवे या नहीं, उनको अपने मन और सुरत को, स्वरूप का ख़्याल करके, स्थान पर जमाना चाहिये और जो उनके मन में थोड़ा स्वरूप में भाव और प्रेम है तो यह कार्रवाई उनसे दुरुस्त बन पड़ेगी यानी मन और सुरत उनके, स्वरूप के आसरे, स्थान पर किसी क़दर ठहरने लगेंगे और ऊँचे देश में ठहरने का रस थोड़ा-बहुत ज़रूर मालूम पड़ेगा और ज़्यादा ठहराव या ऊँचे स्थान पर चढ़ाव के साथ वह रस और आनन्द बढ़ता जावेगा।

१६—जो कोई अभ्यासी यह चाहते हैं कि पहिले हम को दर्शन मिलें तब ध्यान करें, यह चाह उनकी ना-जायज़ तो नहीं है, पर कमी शौक़ और विरह और प्रेम की इससे पाई जाती है, क्योंकि ऐसी मौज मालूम नहीं होती है कि हर किसी को स्वरूप के दर्शन अन्तर में, मुवाफ़िक़ उसके इरादे के, जब चाहे जब मिल जावें। इस वास्ते कुल्ल सतसंगियों को मुनासिब है कि अपने २ शौक़ के मुवाफ़िक़ स्वरुप अनुमान करके अभ्यास शुरु करें और

दर्शनों की प्राप्ति मौज पर छोड़ दें, राधास्वामी दयाल जब-जब और जैसे २ जिस २ जीव के वास्ते मुनासिब होगा, वक़्तन्-फ़वक़्तन् दया फ़रमावेंगे, यानी किसी को अक्सर और किसी को कभी २ स्वरूप का दर्शन देते रहेंगे।

१७—मुवाफ़िक़ ख़्वाहिश के हर रोज़ और हर वक़्त जब मन चाहे दर्शन मिलने में बड़ी आसानी अभ्यास की होती है और प्रेम भी जल्द बढ़ता है। पर यह हालत थोड़े दिन रह सक्ती है, क्योंकि रास्ता दूर व दराज़ है और वास्ते उसके काटने के, विरह और शौक़ की तरक़्क़ी ज़रूर चाहिये। और मन में बे-कली और घबराहट का जब तब पैदा होना वास्ते उसकी सफ़ाई और चढ़ाई के ज़रूर है। और यह बात जब तक कि दर्शन हर वक़्त मिलते रहेंगे, हासिल न होगी।

१८—और यह बात भी सतसंगियों को जानना ज़रुर है कि सच्चे परमार्थ के हासिल करने के वास्ते सच्चे गुरु का संग चाहिये। जो संत सतगुरु न मिलें तो जो कोई प्रेमी सतसंगी उनसे मिला हुआ मिल जावे, और वह साधना कर रहा है और कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल का मंज़ूर-ए-नज़र है यानी उस पर उनकी मेहर और दया है, तो उसके संग से भी कारज बनना मुमकिन है। यानी जब कोई सच्चा प्रेमी उस सतसंगी से, भेद और जुगत दरियाफ़्त

करके अभ्यास शुरू करेगा, तो उसको राधास्वामी दयाल अपने चरणों में लगावेंगे और अन्तर और बाहर परचे देकर उसकी प्रीत और प्रतीत को बढ़ावेंगे। इससे उस सच्चे प्रेमी को यक़ीन हो जावेगा कि कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल ने उसको मंज़ूर और क़बूल फ़रमाया यानी अपना कर लिया और दिन २ उसकी दुरुस्ती करते जाते हैं। फिर उसको मुनासिब होगा कि उसी प्रेमी सतसंगी का सतसंग करे जाय और जो ज़ाहरी समझ-बूझ और मदद दरकार होवे, उससे लिये जावे। वह आप चल रहा है और उसको भी संग २ चलाता जावेगा और एक दिन दोनों धुर घर में पहुँच जावेंगे।

१६—अक्सर सतसंगी अभ्यासी इस बात की जल्दी करते हैं कि हमारी सुरत एक दम चढ़ा दी जावे या कि कोई मुक़ाम हमको खुल जावे। यह चाह तो अच्छी है, लेकिन इसके पूरा होने के लिये जल्दी और इज़्तराबी और घबराहट नहीं चाहिये, क्योंकि यह काम आहिस्ता २ दुरुस्त बनेगा और जल्दी में नुक़सान होगा।

२०—मालूम होवे कि सुरत की धार से तमाम बदन चैतन्य है। और जिस क़दर वह धार सिमट कर ऊपर की तरफ़ चढ़ती जावेगी, उसी क़दर पिंड ख़ाली होता जावेगा या उसमें कमी होती जावेगी। सो ऐसी कमी

की बरदाश्त यकायक नहीं होगी। लेकिन जो आहिस्ता २ चढ़ाव और उतार होगा तो उसमें किसी किस्म की हर्ज देह की कार्रवाई और उसकी सम्हाल में वाक़ै नहीं होगा। और जो मुख्य अंग मन और सुरत का, एक दम या जल्दी खिंच जावेगा, तो देह की सम्हाल जैसी कि चाहिये वैसो नहीं हो सक्ती और न दुनिया के कारोबार में मन लगेगा, यानी ऐसे अभ्यासी का वर्ताव यक-तरफ़ा हो जावेगा, बल्कि परमार्थ भी आइन्दा दुरुस्ती से नहीं बनेगा और बे-होशी ज़्यादा ग़ालिब होकर आगे का रास्ता बन्द हो जावेगा। फिर वह शख़्स न स्वार्थ के काम का रहा और न परमार्थ का, दोनों कामों में भारी हर्ज़ और नुक़सान हो गया। इस वास्ते ऐसी चाल संत नहीं चलाते। उनको जीव को आहिस्ता आहिस्ता चला कर धुर मंज़िल में पहुँचाना मंज़ूर है, न कि रास्ते में अटका कर छोड़ देना।

२१—इस वास्ते कुल्ल अभ्यासी सतसंगियों को मुनासिब है कि ऐसी जल्दी कि जिसमें उनका काम बिगड़े, न करें, और जैसे २ उनको राधास्वामी दयाल कभी-कभी रस और आनन्द और कभी २ विरह और बे-कली देकर चलावें, उसी तरह चलते जावें और अपनी तरक़्क़ी के वास्ते जब २ दिल चाहे, अर्ज़-मारूज़ भी करते रहें। पर निरास होकर अभ्यास में सुस्त और ढीले न हो जावें और अपने प्रेम को रूखा-फीका न होने दें।

माँगना क़तई मना नहीं किया गया है। लेकिन इस क़दर अहतियात चाहिये कि जो माँग पूरी न होवे या सतसंगी की ख़्वाहिश के मुआफ़िक़ काम न बने तो उनसे बे-मुख न हो जावे, और जो कुछ कि मौज से होवे उसी में मसलहत और अपना असली फ़ायदा समझ कर धीरज और सब्र और सन्तोष के साथ बरदाश्त करे।

२५—जब कभी कोई चिन्ता या तकलीफ़ पेश आवे तो उस वक़्त मुनासिब है कि ध्यान या भजन में बैठ कर पहिले अपनी चिन्ता या तकलीफ़ का हाल अर्ज करे, और फिर अपने मन और सुरत को समेट कर जिस क़दर बन सके, स्वरूप या शब्द या दोनों में लगा देवे। तो उसको थोड़ी-बहुत शान्ति या सब्र या ताक़त बरदाश्त की ज़रूर हासिल होगी।

२६—उत्तम दरजे की भक्ति का क़ायदा यह है कि भक्त यानी प्रेमी सतसंगी की किसी क़िस्म की अपनी चाह या किसी चीज़ में गहरा बन्धन न रहे, और अपने भगवन्त यानी कुल्ल-मालिक को सर्व-समर्थ और अन्तरजामी और अपना सच्चा हितकारी और हर वक़्त का मददगार समझ कर निःचिन्त रहे, और अपने मालिक के चरणों के प्रेम में हर वक़्त मगन रहे और जब-तब चरण रस लेता रहे। लेकिन यह हालत हर एक की एक दम नहीं हो

सक्की। आहिस्ता २ सतसंग और अभ्यास और भक्ती करके दुनिया के ख़्याल और चाहें और बन्धन और चिन्ता कम और हलके होते जावेंगे और उसी क़दर राधास्वामी दयाल की सरन पक्की होती जावेगी और उनकी दया का भरोसा मज़बूत होता जावेगा। सो जब तक कि हालत पूरण प्रेम की हासिल होवे, तब तक, जब २ अभ्यासी भक्त के मन में जो चाह ज़रूरी सामान की उठे, या कोई तकलीफ़ या चिन्ता सतावे, उस वक़्त जो वह अपना हाल चरणों में अर्ज़ करे या कोई माँग माँगे तो कुछ मुजायक़ा नहीं है। राधास्वामी दयाल अपनी मेहर से कच्चे लेकिन सच्चे भक्त की सम्हाल जिस क़दर मुनासिब है आप फ़रमावेंगे और जब २ मुनासिब समझेंगे, उसकी अर्ज़ और माँग भी मंज़ूर करेंगे। और जो मंज़ूर करना मुनासिब नहीं होगा, तो (जो मुनासिब होगा) उसकी वजह यानी मसलहत भी उसको जतावेंगे, जिससे उसको ताक़त बरदाश्त की हासिल होवेगी और किसी वक़्त और हालत में अधीर और बे-सब्र नहीं होगा। पर शर्त यह है कि जब से वह राधास्वामी दयाल की सरन में आया, कोई नाक़िस यानी पाप कर्म जान-बूझ कर न करे और अपना व्यवहार और बर्ताव उनके हुकम के मुवाफ़िक़, जहाँ तक बन सके, दुरुस्त करे।

२७—और मालूम होवे कि बहुत सी तकलीफ़ों

और बलाओं को, जो कि अभ्यासी सतसंगी के पिछले कर्मों के असर से आयद होती हैं, राधास्वामी दयाल बाला २ अपनी मेहर और दया से टाल देते हैं या सूली का काँटा कर देते हैं कि जिनकी उसको ख़बर भी नहीं होती, और बहुत से कर्मों को सहज में बाहर या अन्तर अभ्यास में भुगतवा देते हैं कि जिनकी बहुत थोड़ी झड़क इसको मालूम होती है और उन कर्मों के पूरे असर की ख़बर भी नहीं होती। इस सबब से, हरदम, सतसंगी अभ्यासी को उनकी दया का शुकराना वाजिब है। इसी तरह सिर्फ सतसंगी अभ्यासी के ही नहीं, बल्कि उसके प्यारों और नज़दीक के रिश्तेदारों के भी कर्म बहुत रियायत के साथ काटे जाते हैं कि जिससे उनको और सतसंगी अभ्यासी को बहुत कम तकलीफ़ व्यापती है और बहुत रफ़ाइयत यानी बचाव और सँभाल उन कर्मों के भुगताने में राधास्वामी दयाल अपनी दया से फरमाते हैं। ऐसी दया का हाल हर एक सतसंगी को मालूम भी नहीं होता यानी जताया नहीं जता है, लेकिन जो कोई अपने रोज़मर्रा के हाल और मन और इन्द्रियों की चाल और दया की सम्हाल की निरख-परख करते रहते हैं, उनको थोड़ा-बहुत हाल दया और रक्षा का मालूम होता रहता है और वे तहे-दिल से उनका शुकराना बजा लाते हैं।

२८—प्रेमी सतसंगी को मुनासिब और लाज़िम है

कि जो वह भजन की तरक़्क़ी और रस चाहे, तो अपना संसारी व्यवहार और परमार्थी बर्ताव, दोनों को मुवाफ़िक़ हुक्म के, जिस क़दर बन सके, दुरुस्त करे और इस बात की होशियारी रक्खे कि जहाँ तक मुमकिन होवे उस के हाथ से अपने मतलब के लिये किसी को दुख और तकलीफ़ न पहुँचे, और आम तौर पर प्रीत और दया-भाव का बर्ताव सब के साथ रहे। जो लोग कि राज-दरबार में नौकरी करते हैं और वहाँ उनको लोगों को दंड और सजा देना पड़ता है या किसी के साथ नरमी और किसी के साथ सख़्ती से बर्ताव करना पड़ता है, तो मुवाफ़िक़ क़ानून के अमल-दरामद करने में कुछ मुजायक़ा नहीं है। लेकिन जो मुनासिब तौर पर थोड़ा दया का अंग उस बर्ताव में भी संग रहे तो बेहतर है।

२६—इसी तरह परमार्थ के बर्ताव में मुख्यता मालिक के चरणों में प्रीत और प्रतीत की है। बग़ैर इसके, न तो सरन दुरुस्त हो सक्ती है और न अभ्यास थोड़े-बहुत प्रेम के साथ बन सक़ा है। इस वास्ते हर एक काम में राधास्वामी दयाल की दया और मौज का आसरा रखना मुनासिब और ज़रूर है। और फ़िज़ूल तरंगों संसारी भोग और बिलास और नामवरी वग़ैरा से जहाँ तक बन सके, अपना बचाव रखना लाज़िम है कि जिससे अपने हिरदे में मलीनता न बढ़े और भजन में विघ्न वाक़ै न होवें।

३०—जो इन दो शब्दों का पाठ रोज़मर्रा थोड़ी होशियारी के साथ एक दफ़े नेम से कर लिया जावे, तो यक़ीन होता है कि राधास्वामी दयाल की दया से ग़फ़लत और भूल कम होवेगी, और बहुत से कामों में अहतियात बन आवेगी, और जो कोई कसर का काम, इत्तिफ़ाक़ से या अन-जाने बन पड़ेगा तो उसकी ख़बर जल्द हो जावेगी और पछताने और प्रार्थना करने से उसका नाक़िस असर जल्द दूर हो जावेगा और आइन्दा को हाशियारी बढ़ती जावेगी। और इन शब्दों में जहाँ लफ़्ज़ 'गुरू' का आया है, उससे मतलब सिर्फ देह धारी गुरु से नहीं है, बल्कि कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल से है, यानी गुरु लफ़्ज़ से मतलब कुल्ल मालिक और नर स्वरूप गुरु से है। और वे दोनों शब्द यह हैं :—

शब्द १

चेतो मेरे प्यारे तेरे भले की कहूँ ॥ १ ॥
गुरु तो पूरा ढूंढ़ तेरे भले की कहूँ ॥ २ ॥
शब्द रता गुरु देख तेरे भले की कहूँ ॥ ३ ॥
तिस गुरु सेवा धार तेरे भले की कहूँ ॥ ४ ॥
गुरु चरनामृत पी तेरे भले की कहूँ ॥ ५ ॥
गुरु परशादी खाव तेरे भले की कहूँ ॥ ६ ॥
गुरु आरत कर ले तेरे भले की कहूँ ॥ ७ ॥
तन मन भेंट चढ़ाव तेरे भले की कहूँ ॥ ८ ॥
बचन गुरू का मान तेरे भले की कहूँ ॥ ९ ॥

गुरु को कर परसन्न तेरे भले की कहूँ ॥ १० ॥
नित्त भजन कर नेम तेरे भले की कहूँ ॥ ११ ॥
जीव दया तू पाल तेरे भले की कहूँ ॥ १२ ॥
दुक्ख न दे तू काय तेरे भले की कहूँ ॥ १३ ॥
बचन तान मत मार तेरे भले की कहूँ ॥ १४ ॥
कड़ुवा तू मत बोल तेरे भले की कहूँ ॥ १५ ॥
सब को सुख पहुँचाव तेरे भले की कहूँ ॥ १६ ॥
नाम अमी रस पीव तेरे भले की कहूँ ॥ १७ ॥
सील क्षमा चित राख तेरे भले की कहूँ ॥ १८ ॥
संतोष विवेक विचार तेरे भले की कहूँ ॥ १९ ॥
काम क्रोध को टार तेरे भले की कहूँ ॥ २० ॥
लोभ मोह को टार तेरे भले की कहूँ ॥ २१ ॥
दीन गरीबी धार तेरे भले की कहूँ ॥ २२ ॥
संतों से कर प्रीत तेरे भले की कहूँ ॥ २३ ॥
भोजन बहुत न खाव तेरे भले की कहूँ ॥ २४ ॥
सतसंग में तू जाग तेरे भले की कहूँ ॥ २५ ॥
मान बड़ाई छोड़ तेरे भले की कहूँ ॥ २६ ॥
भोग वासना जार तेरे भले की कहूँ ॥ २७ ॥
सम दम हिरदे धार तेरे भले की कहूँ ॥ २८ ॥
वैराग भक्ति ना छोड़ तेरे भले की कहूँ ॥ २९ ॥
गुरू स्वरूप धर ध्यान तेरे भले की कहूँ ॥ ३० ॥
गुरु ही का जप नाम तेरे भले की कहूँ ॥ ३१ ॥
गुरु अस्तुति कर नित्त तेरे भले की कहूँ ॥ ३२ ॥
गुरु से प्रेम बढ़ाव तेरे भले की कहूँ ॥ ३३ ॥
तीरथ मूरत भर्म तेरे भले की कहूँ ॥ ३४ ॥
ज़ात अभिमान बिसार तेरे भले की कहूँ ॥ ३५ ॥

पिछलों को तज टेक तेरे भले की कहूँ ।। ३६ ।।
वक़्त गुरू को मान तेरे भले की कहूँ ।। ३७ ।।
तीरथ गुरू के चरण तेरे भले की कहूँ ।। ३८ ।।
गुरु की सेवा बर्त तेरे भले की कहूँ ।। ३९ ।।
विद्या गुरु उपदेश तेरे भले की कहूँ ।। ४० ।।
और विद्या पाखंड तेरे भले की कहूँ ।। ४१ ।।
लीक पुरानी छोड़ तेरे भले की कहूँ ।। ४२ ।।
जो गुरु कहें सो मान तेरे भले की कहूँ ।। ४३ ।।
मारग ज्ञान न धार तेरे भले की कहूँ ।। ४४ ।।
भक्ती पंथ सम्हार तेरे भले की कहूँ ।। ४५ ।।
सुरत-शब्द मत ले तेरे भले की कहूँ ।। ४६ ।।
सुरत चढ़ा नभ माहिं तेरे भले की कहूँ ।। ४७ ।।
गगन त्रिकुटी जाव तेरे भले की कहूँ ।। ४८ ।।
दसवें द्वार समाव तेरे भले की कहूँ ।। ४९ ।।
भँवरगुफा चढ़ आव तेरे भले की कहूँ ।। ५० ।।
सत्तलोक धस जाव तेरे भले की कहूँ ।। ५१ ।।
अलख अगम को पाव तेरे भले की कहूँ ।। ५२ ।।
राधास्वामी नाम धियाव तेरे भले की कहूँ ।। ५३ ।।
भटक अटक सब तोड़ तेरे भले की कहूँ ।। ५४ ।।
टेक पक्ष गुरु बाँध तेरे भले की कहूँ ।। ५५ ।।

शब्द २

गुरू की मौज रहो तुम धार ।
गुरू की रज़ा सम्हालो यार ।। १ ।।

गुरू जो करें सो हित कर जान ।
गुरू जो कहें सो चित धर मान ।। २ ।।

शुकर की करना समझ विचार।
सुक्ख दुख देंगे हिकमत धार ॥ ३ ॥
ताड़ और मार करें सोई प्यार।
भोग सब इन्द्री रोग निहार ॥ ४ ॥
कहूँ क्या दम दम शुकर गुज़ार।
बिना उन और न करने हार ॥ ५ ॥
दुखी चित से न हो दुख लार।
सुखी होना नहीं सुख जार ॥ ६ ॥
बिसारो मत उन्हें हर बार।
दुक्ख और सुक्ख रहो उन धार ॥ ७ ॥
गुरू और शब्द यह दोउ मीत।
नहीं कोइ और इन धर चीत ॥ ८ ॥
यही सतपुर्ष यही करतार।
लगावें तोहि इक दिन पार ॥ ९ ॥
बिना उन कोई नहीं संसार।
देव मन सूरत उन पर वार ॥ १० ॥
करें वह नित्त तेरी सार।
तेरे तन मन के हैं रखवार ॥ ११ ॥
शुकर कर राख हिरदे धार।
मिटावें दुक्ख सब हो झाड़ ॥ १२ ॥
करें क्या मन तेरा नाकार ॥
नहीं तू छोड़ता विष धार ॥ १३ ॥
भोग में गिरे बारम्बार।
न माने कहन उनकी सार ॥ १४ ॥

इसी से मिले तुझ को दंड।
नहीं तू मानता मति मन्द ॥ १५ ॥
सहो अब पड़े जैसी आय।
करो फ़र्याद गुरू से जाय ॥ १६ ॥
पकड़ फिर उनहीं को तू धाय।
करेंगे वोही तेरी सहाय ॥ १७ ॥
बिना उन और नहीं दरबार।
रहो उन चरण में हुशियार ॥ १८ ।
गुनह तुम किये दिन और रात।
गुरू की कुछ न मानी बात ॥ १९ ॥
इसी से भोगते दुख घात।
बचावेंगे वोही फिर तात ॥ २० ॥
रहो राधास्वामी के तुम साथ।
लगे फिर शब्द अगम तुम हाथ ॥ २१ ॥

बचन ४

शब्द की महिमा और हर जगह रचना में उसकी कार्रवाई का वर्णन, और यह कि उसी के वसीले से जीव का सच्चा और पूरा उद्धार संत सतगुरु की दया से मुमकिन है। और किसी तरह से धुर पद में पहुँचना और जनम-मरन से सच्चा छुटकारा मुमकिन नहीं है।

१—इस दुनिया में जो नज़र-ए-ग़ौर से देखा जाता है तो मालूम होता है कि कुल्ल कार्रवाई सुरत चैतन्य की है जो एक पिंड में बैठ कर उस पिंड की सम्हाल और भी दुनिया का कारज और व्यवहार कर रही है।

२—हरचंद जीवों की चाह और प्रतीत अनेक क़िस्म के जड़ पदार्थों में, जैसे खाने-पीने, पहिरने-ओढ़ने और आरायश (सजावट) और नुमायश (दिखावट) के सामान वग़ैरा में है, लेकिन मुख्यता सब की चैतन्य स्वरूपों में है यानी सुरत-चैतन्य से सब कोई प्रीत करते हैं और इनमें से विशेष चैतन्य यानी मनुष्य स्वरूप में अधिक भाव और प्यार किया जाता है, यानी उसी का अदब और हुक्म-बरदारी और उसी से अपनी बहुत सी कार्रवाई में मदद का आशा रखते हैं और उसी को सब से बड़ा (जैसे बादशाह और महाराजा वग़ैरा) समझ कर, उसकी निहायत दरजे की ताबेदारी करते हैं और इसी मनुष्य स्वरूप में (जैसे स्त्री और पुत्र और दोस्त) निहायत दरजे की मुहब्बत करते हैं।

३—जड़ पदार्थों में, और सिवाय मनुष्य शरीर के और जानदारों में, प्रीत कारज-माल होती है, यानी जो काम उनसे निकलता है या उनसे लेना है या उनके वसीले से बनता है, उसी मुवाफ़िक़ उन पदार्थों और जानदारों की

ख़ातिरदारी और सम्हाल और रक्षा की जाती है, लेकिन मनुष्य स्वरूप में प्रीत भी जैसा २ मौक़ा होता है, गहरी की जाती है, और मन में उसका भय और भाव भी ज़्यादा रहता है, और जहाँ कोई अपने से बड़ा या बहुतेरों से बड़ा शुमार किया जाता है, उसकी हुकुम-बरदारी और रज़ा-मन्दी का बहुत भारी ख़्याल दिल में रहता है।

४—अब ख़्याल करो कि जो आम जानदार हैं और मनुष्य स्वरूप, चैतन्य का निज रूप कहा है, जो ग़ौर किया जाय तो मालूम होगा कि इन सब का निज रूप शब्द स्वरूप है यानी शब्द उस चैतन्य सुरत का जो इन सब में मौजूद है, सिर्फ़ ज़हूरा ही नहीं बल्कि निशान और सबूत सुरत चैतन्य की मौजूदगी का है, तो इससे साबित हुआ कि सुरत चैतन्य जो जौहर है और कुल्ल पिंड का जिस में वह आन कर बैठी है, मुतहर्रिक यानी प्रेरक है। उसका ज़ाहिरी रूप शब्द है। और सब कोई शब्द को ही मान रहे हैं और शब्द ही की सेवा और ख़ातिरदारी और हुकुम बरदारी कर रहे हैं और शब्द ही के साथ प्रीत और शब्द ही का भय और भाव कर रहे हैं और शब्द ही के वसीले से आराम और तकलीफ़ पाते हैं और शब्द ही के संयोग और वियोग में सुखी-दुखी होते हैं।

५—ख़ुलासा यह है कि इस रचना में कुल्ल कार्रवाई

शब्द की है। यानी जितने काम कि हो रहे हैं या जारी किये जाते हैं, सब शब्द के वसीले से होते हैं और शब्द ही उन सब का करता है। यानी जितने इल्म और हुनर और कारीगरी और सब तरह का सामान और असबाब और कलें वग़ैरा जो दुनिया में मौजूद हैं, सब शब्द स्वरूपी सुरत-चैतन्य के बनाये हुये और पैदा किये हूये हैं। और जाहिरी सम्हाल और इन्तिज़ाम इस दुनिया का शब्द स्वरूपी चैतन्य सुरतें कर रही हैं और असल में उसी शब्द स्वरूप को सब मान रहे हैं और आप भी सब जानदार शब्द स्वरूप हैं।

६—अब समझना चाहिये कि जैसे इस लोक की रचना में शब्द की ही मुख्यता है और कुल्ल कार्रवाई उसी के आसरे चल रही है, ऐसे ही ऊँचे लोकों में, बल्कि कुल्ल रचना में भी शब्द स्वरूपी चैतन्य के वसीले से कुल्ल कार्रवाई हो रही है। और जहाँ जिस का मेला होता है या हो रहा है, शब्द स्वरूप के ही वसीले से होता है। और कुल्ल चैतन्य-रचना शब्द स्वरूप है और सर्व शक्ति और ज्ञान और समर्थता, उसी शब्द स्वरूप में धरी हुई है और शब्द ही कुल्ल रचना का जौहर और करतार और रक्षक है।

७—जो कि हर एक लोक और कुल्ल रचना में शब्द स्वरूपी सुरत-चैतन्य की ही कार्रवाई है और यह मुवाफ़िक़

रूपों यानी पिंडों के बे-शुमार हैं, तो जो कि इन सब का भंडार है यानी जहाँ से कि सब आई हैं, वह सर्व-समर्थ और सर्व-ज्ञानी और सर्व-करता और सर्व-रक्षक हुआ। उसको संत कुल्ल-मलिक राधास्वामी दयाल कहते हैं और जो कि सर्व सुख और आनन्द और रस सुरत-चैतन्य की धार के वसीले से हासिल होते हैं, तो वही कुल्ल-मालिक सर्व-सुख और सर्व-आनन्द और सर्व-रसों का भंडार हुआ, और सब सुरतें जहाँ २ जैसे २ पिंड में बैठ कर कार्रवाई कर रही हैं, वे उस कुल्ल-मालिक की जिसको महा सिंध और महा सूरज कहना चाहिये, बूँदें और किरनें हैं। इस वास्ते उनका ज्ञान और शक्ति और समर्थता और आनन्द भी अल्पज्ञ यानी थोड़ा है और वह कुल्ल-मालिक इन सब बातों का अथाह और अपार ख़ज़ाना और भंडार है।

८—अब जो कोई सुरत-चैतन्य इस हक़ीक़त को समझ कर चाहे कि परम आनन्द और पूरन सुख और परम ज्ञान को प्राप्त होवे और रूप यानी पिंड की तकलीफ़ों और उसके वक़्तन-फ़वक़्तन भाव और अभाव यानी जनम, मरन के दुख-सुख से बच जावे, तो उसको चाहिये कि चैतन्य धार को, जो कि शब्द की डोरी है, पकड़ कर, अपने भंडार यानी कुल्ल-मालिक के चरणों की तरफ़ चलना शुरू करे, तो आहिस्ता २ एक दिन धुर पद में पहुँच कर अपना

काम पूरा बना लेगी। और इस शब्द की डोरी पकड़ कर चलने की जुगत, संत सतगुरु से, जो धुर धाम के भेदी हैं और आप रास्ता तै करके यानी शब्द की धार पर सवार होकर वहाँ पहुँचते हैं या साध गुरू से जिन्होंने संत सतगुरु से मिल कर और भेद और जुगत चलने की उनसे लेकर कुछ रास्ता तै किया है और आगे चल रहे हैं और पहुँचनहार है, हासिल होगी ॥

६—उस कुल्ल-मालिक को अरूप और अपार और अनन्त कहते हैं और उससे जो शब्द की धार आदि में प्रगट हुई, उसी ने नीचे उतर कर किसी स्थान पर रंग, रूप और रेखा धारन की और फिर वहाँ से नीचे रूपवान रचना होती चली आई और ज़्यादा नीचे उतर कर रूपों में विचित्रता यानी अनेक क़िस्में इस क़दर हो गईं कि जिनका ब-ख़ूबी शुमार नहीं हो सक्ता। अब जो कोई रूप-धारी है और इस तरफ़ से निज धाम की तरफ़ चलना और वहाँ पहुँचना चाहे, तो दरजे-ब-दरजे रूपों के आसरे आसानी से शब्द की धार पर सवार होकर रास्ता तै कर सक्ता है। और इस रूप से मतलब उस स्वरूप से है कि जो हर एक दरजे या मंडल में उस मंडल और नीचे की रचना का धनी और मालिक है। इस तरह एक मंडल से दूसरे मंडल में चढ़ाई यानी पहुँचना मुमकिन है और जब आख़िरी

स्वरूप के मंडल में पहुँच जावेगा, तब वही स्वरूप, अरूप पद को लखावेगा और उसमें पहुँचावेगा।

१०—जो कि अरूप पद अथाह और अपार है और वह ऊँचे से ऊँचे या गहरे से गहरे देश में विराजमान है, और उसके नीचे या बाहर की तरफ़ किसी स्थान से रूपवान रचना शुरू होकर दूर तक बढ़ती और फैलती गई है और वह अरूप चैतन्य, स्वरूपों में गुप्त होकर, सब जगह मौजूद है और शब्द स्वरूप से सब जगह प्रकट हो रहा है, इस वास्ते जो कोई नीचे या दूर की रचना से इरादा पहुँचने अरूप पद का करे, तो जब तक वह शब्द को पकड़ कर जितने परदे या स्वरूप जो बीच में हायल हैं, उनसे मिलकर रास्ता तै करता हुआ न चलेगा, तब तक उस कुल्ल-मालिक से जो कि अरूप और अपार और अनन्त है, नहीं मिल सक्ता, और न उस पद में और किसी तरह से पहुँच सक्ता है।

११—जिन लोगों ने कि कुल्ल-मालिक के अरूप और स्वरूप की महिमा सुन कर और स्वरूप का हद-दार और एक-देशी होना समझ कर उसका निरादर किया, और अरूप में ही एक दम पहुँचने का इरादा करके किसी क़िस्म का जतन शुरु किया, तो उन्होंने धोखा खाया और जिस देश में कि वे रूप धर कर पैदा हुए, उसी मंडल के स्वरूप

के पीछे जो अरूप है, उस में समाये और वह अरूप माया के ग़िलाफ़ से ढका हुआ है, यानी उसी में से सब रचना का मसाला जो उस मंडल में हो रही है, निकलता है। इस वास्ते जो सुरतें कि इस अरूप में समाईं, वे देर या अबेर फिर देह धर कर प्रगट यानी पैदा होती हैं। इसी तरह जहाँ तक कि रूपवान रचना है, वहाँ के स्वरूप और अरूप में थोड़ी-बहुत माया, चाहे लतीफ़ है या कसीफ़, खोल या ग़िलाफ़ होकर, मिली है और निर्मल अरूप सिर्फ़ निर्माया देश में प्रकट है और बाक़ी सब जगह जैसा कि ऊपर कहा गया, थोड़ी या बहुत लतीफ़ या कसीफ़ माया से ढका हुआ है।

१२—खुलासा यह कि जब तक कोई एक मंडल के स्वरूप से दूसरे मंडल के स्वरूप तक, और इसी तरह से सब मंडलों को जहाँ जहाँ स्वरूप मौजूद है, तै करके यानी कुल्ल माया के घेर के पार न पहुँचेगा, तब तक सच्चे अरूप का दर्शन नहीं पावेगा। इस वास्ते जिन्होंने अरूप को सर्व-व्यापक मान कर जिस मंडल में कि वह पैदा हुए, वहीं के रूप का अभाव करके अरूप में समाये, तो वे उस परदे में रहे जहाँ से कि रचना उस मंडल को जारी है और। इस सबब से जनम-मरन से उनका छुटकारा नहीं हुआ और इस वास्ते उनका सच्चा उद्धार भी नहीं हुआ। जितने ज्ञानी और सूफ़ी और वेदान्ती और फ़ैलसूफ़ हुए या अब

मौजूद हैं, उन सब का यही हाल समझना चाहिये। और उनका यही मत है कि जहाँ वे हैं, वहाँ के नाम-रूप को मायक और मिथ्या समझ कर और उसकी तरफ़ से चित्त को हटा कर, वहीं के अरूप में जोड़ते हैं और उसी को सिद्ध करते हैं और उसी को आत्मा यानी अपना स्वरूप कहते हैं और परमात्मा यानी कुल्ल-मालिक से उसकी एकता करते हैं।

१३—यह बात अब ज़्यादा खोल कर कही जाती है कि असली अरूप पद से जो आदि धार आई, वही सब रचना की करता है, और उसी से अरूपी और स्वरूपी पद और सूक्षम और स्थूल रूपवान रचना दरजे-बदरजे उतार होकर पैदा हुई। और हरचंद वह असली अरूपी चैतन्य सब जगह मौजूद है, पर सिवाय निज धाम के और सब जगह दरजे-बदरजे ग़िलाफ़ों से ढका हुआ है। सो जब तक कि कोई नीचे के दरजे के अभ्यास करके, निज मुक़ाम तक नहीं पहुँचेगा, तब तक उसको निज स्वरूप यानी असली अरूपी चैतन्य स्वरूप का दर्शन किसी जगह नहीं हो सक्ता। इस सबब से जिन्होंने कि प्रथम ही नाम और रूप का निरादर करके अरूप की तरफ़ लगना चाहा, उन्होंने बहुत धोखा खाया कि जहाँ वे थे वहीं के ग़िलाफ़ी अरूप में समाये और जनम-मरन के चक्कर से उनका बचाव नहीं हुआ, यानी उनका सच्चा उद्धार नहीं हुआ,

क्योंकि जिस सिलसिले से ऊपर से नीचे तक की रचना होती चली आई, उसी सिलसिले से उलटना यानी चढ़ाई मुमकिन है, और तरह से काम दुरुस्त और पूरा नहीं बन सक्ता।

१४—देखो इस लोक की ही रचना में सब में उत्तम स्वरूप मनुष्य का है। और नीचे की रचना में इसी के स्वरूप का ख़ाका यानी आकार कमी-बेशी यानी कुछ २ फ़र्क़ के साथ पशु और पखेरू और कीड़े-मकोड़े वग़ैरा में चला गया है। अब दरियाफ़्त करना चाहिये कि यह मनुष्य के आकार का उतार किस स्थान से हुआ है यानी आदि स्वरूप कहाँ है और कितने दरजे बीच में हैं। सो जब तक ये दरजे तै करके कोई आदि स्वरूप के स्थान तक न पहुँचेगा, तब तक असली अरूपी पद में उनका पहुँचना मुमकिन नहीं है।

१५—ख़ुलासा यह कि जो कोई रूपवान रचना के मंडल में है, वह जब तक कि कुल्ल रूपवान रचना के मंडल जो उस के ऊपर यानी सूक्षम से सूक्षम हैं, तै न करेगा, तब तक उस पद में जहाँ से कि प्रथम रुप प्रगट हुआ, नहीं पहुँच सक्ता। इस वास्ते हर एक शख़्स को चाहिये कि जो नाम और रूप के मुक़ाम से हट कर अनाम और अरूप से मिलना चाहे तो भेद रास्ते और मंज़िलों का और जुगत चलने की, भेदी से दरियाफ़्त करके, चलना और चढ़ना शुरू करे, तो

एक दिन वह निज घर में पहुँच जावेगा। और जो कहते हैं कि असली अरूप चैतन्य हर जगह मौजूद है और जो परदे कि बीच में उसके और इस शख़्स के स्थान यानी बैठक के हायल हैं, वे उनसे बे ख़बर हैं और न जुगत उनके फोड़ने यानी तै करने की जानते हैं और चलने-चढ़ने को भरम मानते हैं, वे भारी भूल और मूर्खता में पड़े हुये हैं। उनका छुटकारा यानी सच्चा उद्धार कभी नहीं होवेगा।

१६—मालूम होवे कि ऊँचे से नीचे देश तक जो कुछ कि लतीफ़ और कसीफ़ यानी सूक्षम और स्थूल रचना हुई, वह जगह २ असली मौजूद है। इसमें कुछ शक नहीं कि जो रचना माया के घेर में है, वह हमेशा बदलती रहती है और नाशमान है। लेकिन जब तक कि उस रचना का सिलसिला क़ायम है, जो जीव कि उस रचना में पैदा हुये हैं, वे वहाँ के भोगों और पदार्थों में और तन-मन और इन्द्रियों के संग हमेशा बँधे रहेंगे और जनम-मरन के चक्कर में दुख भोगते रहेंगे, जब तक कि वे उस माया की रचना के घेर से बाहर न जावेंगे।

१७—जो कोई कहे कि हमने सब भेद रचना का समझ लिया और माया और उसके भोग और पदार्थ, और भी उस रचना को जो उसके घेर में हुई है, मिथ्या जान कर अपना निज रूप असली अरूपी चैतन्य समझ लिया

तो ऐसे जानने और समझने से माया के घेर से पार होना मुमकिन नहीं है। यह समझ-बूझ लेकर उसको मुनासिब है कि जैसे निर्मल सुरत-चैतन्य की धार माया के घेर में उतर कर और ग़िलाफ़ों के अन्दर बैठ कर, मन और इन्द्रियों के वसीले से इस लोक में कार्रवाई कर रही है, उसको उसी तरह अभ्यास करके, हर एक परदे को फोड़ कर, उलटावे और माया के मंडल के पार पहुँचावे, क्योंकि बिना भेद और अभ्यास के, यह परदे फूट नहीं सक्ते और न सुरत अपने निज घर की तरफ़ उलट सक्ती।

१८—और जिन लोगों ने स्वरूप की महिमा समझ कर उसकी उपासना की ज़रूरत, वास्ते पहुँचने असली अरुप पद, क़रार दी, लेकिन बजाय दरियाफ़्त करने भेद असली स्वरूप या स्वरूपों के, जो रास्ते में हर एक मंडल में वाक़ै हैं, किसी एक या दो स्थान के स्वरुप की या उस पद के औतारों के स्वरूप की नक़ल, पत्थर या धात की बना कर, उसी की पूजा में अटक रहे और असली स्वरूप का भेद और उसके स्थान और उसमें पहुँचने की जुगत का खोज करके जतन न किया, वे भी जहाँ के तहाँ रहे और एक कदम भी रास्ता तै न किया। इस सबब से उन का भी उद्धार नहीं हुआ।

१९—इसी तरह कुल्ल जीव भूल और भरम और

ग़लती में पड़ गये, और रास्ता सच्चे उद्धार का बन्द हो गया। और बाज़े जीव तन और मन या और २ स्थूल अंगों की सफ़ाई के जतन में जो कि सिर्फ़ संजम थे, और निज घर का रास्ता तै करने की जुगत उनमें नहीं थी, लग गये। और हरचंद कि उन्होंने तकलीफ़ और काष्टा बहुत उठाई, पर जीव के सच्चे उद्धार की करनी उनसे कुछ न बनी, बल्कि और उलटे अहंकारी और रोज़गारी हो गये।

२०—ऐसी हालत जगत की देख कर, कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल, जीवों पर अति दया करके, संत सतगुरु रूप धार कर प्रगट हुये और कुल्ल भेद रास्ते का और हर एक स्थान के स्वरूप का और तरीक़ा चलने का, निहायत सहज करके जो कि लड़का, जवान, बूढ़ा और औरत और मर्द आसानी से कमा सक्ते हैं, आम तौर पर समझाया और सच्चे उद्धार का रास्ता जारी किया। अब जो कोई उसके मुवाफ़िक़ कार्रवाई करे, वह हर एक मंडल के स्वरूपी और अरूपी मालिक का दर्शन करता हुआ, धुर अरूप पद में पहुँच कर, पूरण और अमर आनन्द को प्राप्त हो सक्ता है और जनम-मरन की फाँसी सहज में काट कर, अपना सच्चा उद्धार हासिल कर सक्ता है।

२१—इस कार्रवाई के अंजाम देने के लिये, सिर्फ़ संत सतगुरु या साध गुरू का मिलना और उनसे उपदेश

लेकर, राधास्वामी दयाल की दया और मेहर के बल से प्रेम अङ्ग लेकर अभ्यास करना दरकार है। फिर आहिस्ता आहिस्ता अपने मन और सुरत की चढ़ाई ऊँचे देशों में और अपना सच्चा निरवाह होता हुआ, अभ्यासी जीव आप देख सकता है, और आहिस्ता २ कार्रवाई करके आसानी के साथ एक दिन धुर पद में पहुँच सक्ता है।

२२—इस जगह इस क़दर बयान करना ज़रूर है कि संतों ने कुल्ल रचना के तीन दरजे मुक़र्रर किये। अव्वल दरजा निर्मल चैतन्य यानी दयाल देश जहाँ माया बिल्कुल नहीं है और जहाँ कुल्ल रचना रुहानी यानी सुरत चैतन्य की है। दूसरा, निर्मल चैतन्य और शुद्ध माया देश, जहाँ माया प्रगट हुई और जहाँ ब्रह्माँडी रचना यानी ब्रह्म सृष्टि है। तीसरा दरजा, जहाँ निर्मल चैतन्य और मलीन माया है और जहाँ देवता और मनुष्य और चार खान की स्थूल रचना है। जो रूपवान रचना दूसरे या तीसरे दरजे में है, उसका अबेर-सबेर अभाव यानी नाश होगा, और इस वास्ते वह दरजा क़ाबिल ठहरने अभ्यासी जीव के, जो सच्चा उद्धार चाहता है, नहीं है, क्योंकि वहाँ ठहरने में चाहे वह ठहराव स्वरूप के आसरे होय या अरूप में मिल कर होवे, हमेशा क़ायम नहीं रह सक्ता, यानी कुछ अर्से बाद फिर उत्थान होकर जनम लेना पड़ेगा और देह

धारन करनी पड़ेगी और उसके साथ दुख-सुख जो लाज़मी हैं, सहने पड़ेंगे। इस वास्ते राधास्वामी दयाल ने फ़रमाया है, और कुल्ल संतों का भी यही मत है, कि जब तक सुरत यानी जीव निर्मल चैतन्य देश, सत्त पुरुष राधास्वामी पद में न पहुँचेगी, तब तक पूरा उद्धार नहीं होगा यानी जनम-मरम नहीं छूटेगा।

२३—इस वास्ते प्रेमी सतसंगी को मुनासिब है कि मुवाफ़िक़ हुक्म कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल के, भक्ति अंग लेकर, हर एक स्थान के स्वरूप की (जो दूसरे दरजे में वाक़ै हैं) उपासना यानी ध्यान करता हुआ, शब्द की धार यानी डोरी को पकड़ कर चलना शुरू करे, तब दयाल देश में पहुँचना मुमकिन है। और अगर पहिले ही से अरूप और अशब्दी स्वरूप मालिक से मिलने का इरादा करके और उसको हर जगह मौजूद यानी सर्व व्यापक मान कर कुछ अभ्यास करेगा या सिर्फ़ समझौती लेकर अपने तईं पहुँचा हुआ ख़्याल करेगा (जैसे कि विद्यावान और वाचक ज्ञानी करते हैं) तो वह जहाँ का तहाँ यानी माया के पेट में, जहाँ कि हर दम रचना होती है और बिगड़ती है, पड़ा रहेगा और जमन-मरन के बन्धन में गिरफ़्तार रहेगा यानी उसका सच्चा उद्धार हरगिज़ नहीं होवेगा।

२४—अव्वल दरजे यानी निर्मल चैतन्य देश में भी

चंद स्थान यानी मंडल हैं। और सिवाय सबसे ऊँचे के पद के जो अनन्त और अपार और अगाध है, बाक़ी के मंडलों में रचना है। लेकिन वह रचना हंसों की ऐन रूहानी है यानी वहाँ माया की मिलौनी और मलीनता जिस्मानी नहीं है। इस वास्ते वह रचना अमर और अजर और ऐन आनन्द स्वरूप है, और काल-क्लेश और किसी क़िस्म का कष्ट और दुख वहाँ नहीं है। वहाँ निहायत सूक्ष्म से सूक्ष्म रूप है, पर वह असल में दूसरे दरजे के अरूप से भी ज़्यादा सूक्ष्म है। और रूप का लफ़्ज़ उसकी निस्बत कहना सिर्फ़ समझाने के वास्ते यानी कहने मात्र है। सो जब प्रेमी सतसंगी दूसरे दरजे को तै करके आगे बढ़ेगा, तो उसका रूप भी वैसा ही सूक्ष्म से सूक्ष्म रूहानी स्वरूप हो जावेगा, और उसी रूहानी स्वरूप से अव्वल दरजे के स्वरूपों से, जो असल में नीचे अरूप से ज़्यादा अरुप हैं, मिलेगा। इस तरह पर राधास्वामी मत में प्रेम भक्ति दयाल देश यानी अव्वल दरजे तक जारी रहेगी। और उसको "भेद भक्ति" कहते हैं यानी स्वामी-सेवक का भाव बराबर जारी रहेगा। और जब धुर पद यानी असली अरूप से मिलेगा, तब उसको "अभेद भक्ति" कहते हैं। और वहाँ पहुँचने पर प्रेमी अभ्यासी को ऐसी ताक़त हासिल हो जावेगी कि जब चाहे जब अरूप पद में मिल कर अभेद हो जावे, और जब चाहे जब उससे न्यारा

होकर उसके दर्शन का आनन्द और बिलास करे। ऐसी भारी गति राधास्वामी मत के प्रेमी अभ्यासी को हासिल हो सक्ती है। यह ताक़त, और किसी मत के अभ्यासी को, नीचे के दरजों में जहाँ कि वे अरूप में लै हो गये, कभी हासिल नहीं हुई और न जब तक कि राधास्वामी दयाल की जुक्ति लेकर अभ्यास करें, हासिल हो सक्ती है।

२५—इस क़दर भारी महिमा राधास्वामी यानी संत मत की और उसके उपदेश सुरत-शब्द मार्ग की है कि जिसको अब तक यानी पिछले वक़्तों में किसी ने न जाना, और न अब इस वक़्त में कोई बग़ैर दया और सतसंग संत सतगुरु या साधगुरु या उनके मेली प्रेमी सतसंगी के, जान और समझ सक्ता है। ऐसा आसान मार्ग आज तक किसी ने प्रगट नहीं किया। और हक़ीक़त में किस की ऐसी ताक़त हो सक्ती है कि सिवाय कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल के इस उपदेश को जारी करता? और अब भी बावजूदे कि निहायत दरजे की आसानी इस अभ्यास में रखी गई है और ऊँचे से ऊँचे और गहरे से गहरे पद का भेद और रास्ते की मंज़िलों का हाल, जो किसी को मालूम नहीं हुआ, खोल कर प्रघट किया गया है, लेकिन बिना दया राधास्वामी दयाल के किसी की ताक़त नहीं कि उस अभ्यास को कर सके या उस रास्ते पर चल सके। वही जीव बड़-

भागी हैं कि जिन को राधास्वामी मत का उपदेश और रास्ते का भेद मिल गया है और राधास्वामी दयाल को दया का बल लेकर, उस की कमाई में लगे हुए हैं और दिन २ अपनी हालत बदलती हुई और माया के घेर से अपना निरवार होता हुआ देखते जाते हैं और प्रीत और प्रतीत चरणों में बढ़ाते हुए, आहिस्ता २ रास्ता तै करते जाते हैं। वे ही एक दिन धुर पद में पहुँच कर परम आनंद को प्राप्त होकर अमर और अजर हो जावेंगे और अपने सच्चे मालिक और सच्चे माता-पिता राधास्वामी दयाल के दर्शन का आनन्द और विलास देख कर अपने निज भागों को सरहावेंगे।

२६—जो कोई अपनी नर देह, जो कि निहायत दुर्लभ और अनेक जनम नीच-ऊँच जोनों में धारन करके प्राप्त हुई है, सुफल करना चाहे, यानी इसी देह में अपना सच्चा उद्धार होता हुआ देखना चाहे और धुर पद में, जिस का भेद किसी मत में नहीं है, पहुँच कर जनम-मरन से सच्चा छुटकारा चाहे, उसको चाहिए कि राधास्वामी मत में शामिल होकर सुरत-शब्द मार्ग का अभ्यास विरह और प्रेम अंग लेकर शुरू करे। तब चौरासी के चक्कर से उसका सच्चा बचाव हो जावेगा और एक दिन अपने जिन घर में पहुँच कर कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल का दर्शन पाकर परम आनंद को प्राप्त होगा।

बचन महात्माओं के

(१)

अगर्चे मन में अनेक तरंगें और गुनावनें उठती रहती हैं और उनका रोकना और समेटना एक-बारगी बहुत मुश्किल है, मगर बराबर रोज़-मर्रा अभ्यास करने से कोई दिन में मन किसी क़दर सिमट आवेगा और तरंगें और गुनावनें बे-फ़ायदा नहीं उठेंगी। इस वास्ते अभ्यास बिला नाग़ा नेम से, हर रोज़ करना चाहिये। अगर फ़ुर्सत नहीं मिले तो ग़ैर-ज़रूरी काम मुलतवी करदे, मगर अपना नित्त का अभ्यास न छोड़े यानी थोड़ी देर भजन और ध्यान रोज़-मर्रा ज़रूर करता रहे।

(२)

जो सेवक कि किसी से ईर्षा और विरोध नहीं रखता और सब से मित्र भाव और नम्रता के संग बर्तता है, और किसी शख़्स या चीज़ में उसके मन की पकड़ नहीं है और मन का अहँकार और मान जिसने बिलकुल छोड़ दिया है या छोड़ता जाता है और आराम और मेहनत जिसके नज़दीक बराबर हैं और क्षमा यानी बरदाश्त और सब्र करना जिसकी आदत में दाख़िल है और हमेशा मालिक के चरणों में मिलने की जिसके दिल में अभिलाषा रहती है और मन को जिसने ज़ेर किया है यानी थोड़ा-बहुत क़ाबू

में लाया है और सच्चे मालिक के चरणों में जिसकी प्रतीत दृढ़ और मज़बूत है और मन और बुद्धि दोनों को मालिक के चरणों पर नौछावर कर दिया है, ऐसा सेवक मालिक का निज प्यारा है।

(३)

जब तक धुर की दया न होगी पूरे सतगुरु नहीं मिलेंगे। पूरे सतगुरु एक फल-दार दरख़्त के मुवाफ़िक़ हैं कि फल भी देते हैं और साया भी करते हैं। जिस ज़मीन में ऐसा दरख़्त न हो, वह ज़मीन ऊसर है। वहाँ नहीं रहना चाहिये।

(४)

पूरे सतगुरु जो तवज्जह न करें, तो भी उनका संग नहीं छोड़ना चाहिये। जो सतगुरु दूसरे शख़्स से बात करें तो इसको यही समझना चाहिये कि मुझ से बोल रहे हैं। और उस बचन को अपने हिरदे में लिख ले क्योंकि ऐसे सतगुरु का सतसंग महा दुर्लभ है। अगर यह बराबर उनका सतसंग करता रहेगा तो एक दिन अजर और अमर देश में बासा पावेगा।

(५)

परमार्थ का हासिल होना बग़ैर सतगुरु के मुमकिन नहीं है। पर सेवक भी अधिकारी होना चाहिये कि उन के

बचन को चित्त देकर सुने और निर्मल बुद्धि से समझे और उसके मुवाफ़िक़ थोड़ी-बहुत करनी करे।

(६)

मालिक का तख़्त अंतर में है। जो कोई मालिक का अपने अंतर में खोज करेगा, उसे मालिक का दर्शन प्राप्त होगा और जो कोई बाहर ढूंढ़ता फिरेगा, उसे मालिक हरगिज़-हरगिज़ नहीं मिलेगा। इसकी मिसाल ऐसी है कि बग़ल में लड़का और शहर में ढँढोरा।

(७)

मन की ख़ासियत है कि जो काम शौक़ से करता है, उस का रूप हो जाता है। इस वास्ते चाहिये कि सिवाय मालिक के, किसी चीज़ में सच्ची प्रीत न करे।

(८)

सवाल व जवाब

(१) सवाल—सतगुरु से क्या माँगना चाहिये ?
जवाब—भक्ति और प्रेम मालिक के चरणों का।

(१) सवाल—सतगुरु के संग क्या फ़र्ज़ है ?
जवाब—उनके हुक्म में चलना।

(३) उम्र क्योंकर गुज़राननी चाहिये ?
जवाब—मालिक की याद में, और जहाँ तक मुमकिन होवे, सब को राज़ी रखिये, क्योंकि मालिक का बचन

है कि जो कोई मेरे जीवों को राज़ी रखता है, मैं उस से राज़ी रहता हूँ।

(४) सवाल—आदमी को कौन काम करना बेहतर है ?

जवाब—परमार्थ का कमाना।

(५) सवाल—परमार्थ से क्या फल मिलता है ?

जवाब—पशु से आदमी और आदमी से देवता बन जाता है। इससे ज़्यादा और बहुत बड़े दर्जे हैं, फिर वे हासिल होते हैं। ग़रज़ कि रफ़्ता२ मालिक के सन्मुख पहुँच कर उसका निज प्यारा हो जाता है।

(६) सवाल—सच्चे मालिक की क्योंकर पहिचान हो सक्ती है ?

जवाब—संतों की शरन लेने और उनकी जुगत के अभ्यास से।

(७) सवाल—दुनिया किस को कहते हैं।

जवाब—जो अंत में काम न आवे और मालिक की तरफ़ से बे-मुख रक्खे।

(८) सवाल– मालिक की प्रसन्नता क्योंकर हासिल हो सकती है ?

जवाब—सतगुरु की प्रसन्नता से।

(९) सवाल—सतगुरु की प्रसन्नता कैसे हासिल हो सकती है ?

जवाब—उनके चरणों में गहरी प्रीति और प्रतीत करने से, और जहाँ तक मुमकिन होवे, उनकी आज्ञा में बर्तने से, और उनकी सेवा में तन, मन, धन का सोच-विचार न करे।

(१०) सवाल—सब कामों से बेहतर कौन काम है ?

जवाब—सतसंग करना और भजन करना और उससे फ़ायदा उठाना।

(११) सवाल—सब कामों में बुरा काम कौनसा है ?

जवाब—मालिक को भूलना और धन और भोगों की चाह उठाना।

(१२) सवाल—सेवक किसको कहते हैं ?

जवाब—जो अपने तईं सबसे नीच और छोटा जाने।

कड़ी

दीन हीन जानो अपने को।
निपट नीच मानो अपने को॥

और मालिक के चरणों के प्रेम में लौलीन रहे।

(१३) सवाल—यह सिफ़त क्योंकर हासिल हो सक्ती है ?

जवाब—संत सतगुरु और साध के सतसंग और दया से, पर जो कोई सच्चा होकर लगे।

(१४) सवाल—जीव मालिक की याद में क्यों कर लग सकता है ?

जवाब—मौत की याद रखने और चौरासी के डर से।

(१५) सवाल—मंज़िल पर क्योंकर पहुँचना चाहिये ?

जवाब—धीरज के साथ अभ्यास करना, तब कोई अर्से में रास्ता तै होगा।

(१६) सवाल—गुनाह का इलाज क्या है ?

जवाब—क़सूर करने पर झुरना या पछताना और आइन्दा को होशियार रहना।

(१७) सवाल—ऐसा कौन शख़्स है जो जहाँ जावे उसे सब प्यार करें ?

जवाब—जो हर एक से दीनता करता है।

(१८) सवाल—हिम्मतवाला कौन है ?

जवाब—जो संसारी सुक्खों को छोड़ कर परमार्थ की कमाई करता है।

(१९) सवाल—सच्चा हितकारी कौन है ?

जवाब—सतगुरु, जो बुराई से तुझको बचाते हैं और भलाई सिखाते हैं और सख़्ती और तकलीफ़ में तेरी सहायता और मदद करते हैं।

(२०) सवाल—जो कोई सतसंगी बेजा हरकत करे तो उससे क्योंकर बचना चाहिये ?

जवाब—उससे कम मिलने और बातचीत न करने से ।

(२१) सवाल—क्या जतन करूँ कि हकीम का मोहताज कम होऊँ ?

जवाब—कम खाओ और कम सोवो और भजन करते रहो ।

(२२) सवाल—क्या करूँ कि सब मुझको दोस्त रक्खें ?

जवाब—झूंठ मत बोलो और वादा-ख़िलाफ़ी मत करो और किसी को हाथ और ज़बान से मत सताओ और चित्त में सब से प्यार और दीनता रक्खो ।

(२३) सवाल—सेवा की कै क़िस्में हैं ?

जवाब—सेवा की तीन क़िस्में हैं । अव्वल, तन की सेवा, दूसरे, धन की सेवा और तीसरे, मन की सेवा ।

(२४) सवाल—सेवा का फल क्या है ?

जवाब—निश्चलता मन की, और निर्मलता अंतःकरण की, और प्राप्ति मेहर और दया सतगुरु की ।

(२५) सवाल—जवाँमर्द कौन है ?

जवाब—जो संसार के बिगड़ने से आज़ुर्दा-ख़ातिर और तंग-दिल न होवे ।

(९)

एकान्त में बड़ा फ़ायदा है, बशर्ते कि सिवाय मालिक के, दूसरे का ख़्याल दिल में न आवे। और जो बाहर से एकान्त हुआ और दिल में दुनियावी ख़यालात भरे रहे, तो वह शख़्स मन और शैतान के संग रहेगा।

(१०)

पाँच शख़्सों का संग नहीं करना चाहिये (१) एक, जो झूंठ बोलता है और अहङ्कारी है, (२) दूसरा, नादान कि जो तुम्हारे फ़ायदे के वक़्त तुम्हारा नुक़सान करा देवे, (३) तीसरा, सूम कि मुनासिब वक़्त पर तुम को नेक काम में ख़र्च न करने दे, (४) चौथा, नाक़िस तबीयत यानी ओछा और कमीना आदमी कि जो वक़्त ज़रूरत तुम्हारे काम न आवे और (५) पाँचवाँ, धोखेबाज़ कि अपना लालच देख कर तुम को नुक़सान पहुँचावे।

(११)

जो कोई औरों को बचन सुनाने का शौक़ ज़्यादा रक्खे और अन्तर अभ्यास कम करता होवे, तो उसकी समझ ओछी है और उसका मन अंधा और नादान है और वह अपना वक़्त मुफ़्त खोता है।

(१२)

जो कोई दुनिया को प्यार करता है, उसको भजन का रस कभी नहीं मिलेगा। और जो कोई कामी है, उससे काल

निःचिंत रहता है, क्योंकि उससे निर्मल परमार्थ की कार्रवाई कम बनेगी।

(१३)

ज़बान का सम्हाल कर रखना बहुत मुश्किल है ब-निस्बत सम्हाल धन के। यानी ना-मुनासिब और बेजा बचन ज़बान से नहीं निकालने चाहियें और न किसी की निंदा करनी चाहिये—

दोहा

बोली तो अनमोल हैं, जो कोई जाने बोल।
हिये तराज़ू तोल कर, तब मुख बाहर खोल॥

(१४)

एक औरत भक्त इस तौर पर प्रार्थना किया करती थी कि हे मालिक तू जो कुछ सामान दुनिया का मुझ को दिया चाहे, वह उनको दे जो तुझको भूले हुये हैं। और तू जो स्वर्ग और बैकुण्ठ के सुख मुझ को दिया चाहे वह उनको दे जो उन सुखों को तुझ से चाहते हैं। मुझ को तो तूही चाहिये है।

(१५)

किसी ने शाह इबराहीम से कहा कि मुझ को कुछ उपदेश कीजिये। जवाब दिया कि जब तक ये छः बातें न बनेगी, तब तक भक्ति पूरी न होगी। (१) पहिली, दुनिया के सुख और आराम की चाह छोड़ो और परमार्थ में मेहनत करो। (२) दूसरी, दुनिया का मान और

आदर छोड़ो और निंदा और निरादर सहो। (३) तीसरी, सोना कम करो और जागते रहो। (४) चौथी, धन और माल की चाह छोड़ो और संतोष इख़्तियार करो। (५) पाँचवीं, दुनिया की आशा और तृष्णा दूर करो और उससे अचाह हो। (६) छठी, जहाँ तक बने, क़सूर न करो और मालिक के चरणों में प्रार्थना करते रहो कि कोई क़सूर न बन पड़े और ऐसी करतूत बन आवे कि जिसमें उसकी प्रसन्नता होवे।

(१६)

दूसरे ने उससे नसीहत चाही

जवाब दिया कि अगर ये पाँच बातें माने तो फिर तुझे इख़्तियार है कि जो चाहे सो कर। (१) अव्वल, अपने मन से कह कि हे मन मेरे, मालिक का भजन-बंदगी कर, नहीं तो उसका दिया हुआ रिज़्क़ यानी अन्न मत खा। (२) दूसरी, हे मन मेरे, जिन कामों को मालिक ने मना किया है, उन को मत कर, नहीं तो उसके मुल्क के बाहर निकल जा। (३) तीसरी, हे मन मेरे, जो तू पाप कर्म करना चाहता है तो ऐसी जगह जा कि जहाँ मालिक तुझको न देखे, नहीं तो पाप मत कर। (४) चौथी, हे मन मेरे, जो तू मालिक की दात में राज़ी न होवे तो और मालिक ढूँढ़ जो तुझको बहुत देवे। (५) पाँचवीं, हे मन मेरे, पहिले

इससे कि मौत आवे, मालिक की भक्ति करले, और यह काम इसी वक़्त से शुरू कर ताकि धर्मराय के पास न जाना पड़े और नरकों के दुख से बचाव होवे।

(१७)

जो कोई अपने तईं सबसे उत्तम जानता है, वह नीच है और जो कोई अपने को सबसे ओछा जानेगा, उस की सब बड़ाई करेंगे।

(१८)

जो दिल में मालिक से मिलने का शौक़ पैदा करो तो उस मालिक का ख़ौफ़ भी रक्खो और सब से बढ़का काम मन के बर-ख़िलाफ़ अमल करना है।

कड़ी

सत गुरु कहें करो तुम सोई।
मन के कहे चलो मत कोई॥

(१९)

जो कोई मालिक को पहिचानना चाहे तो चाहिये कि पहिले जिस क़दर बने, मन को दुनिया के ख़यालों से ख़ाली करे, और उसकी याद में मशग़ूल रहे और उसकी सेवा में ठहरा रहे और अपनी भूल-चूक पर रोवे और पछतावे।

(२०)

जब अन्तर की आँख खुलेगी, तो बाहर यानी लिफ़ाफ़े से नज़र हट जावेगी। और तब सिवाय मालिक के और कुछ नहीं दीखेगा।

(२१)

जीवों के मन तीन तरह के होते हैं---मन मुर्दा, मन ग़ाफ़िल और बीमार, और मन सही और दुरुस्त।

मन मुर्दा, संसारियों का है जो कि मालिक का भजन नहीं करते हैं। मन ग़ाफ़िल और बीमार, गुनहगारों का है जो पाप कर्म करते हैं और मन सही और दुरुस्त, उनका है जो हमेशा होशियार और चैतन्य रहते हैं यानी अपने मालिक से डरते हैं और उसका भजन करते हैं।

(२२)

मालिक की बंदगी और भजन से एक छिन भी ग़ाफ़िल नहीं होना चाहिये, क्योंकि यह मन बड़ा मक्कार और दग़ाबाज़ है। हर वक़्त इस जीव की घात में रहता है। ज़रा भी क़ाबू पाने पर इस का बे-शुमार नुक़सान कर देता है।

(२३)

जो कोई तुझ से बदी करे तो उस पर तू ग़ुस्सा मत कर और न उससे बदला लेने का इरादा कर, क्योंकि परमार्थी का क्षमा करने में फ़ायदा है और बुराई करने वाले के साथ ग़ुस्सा करना या बुराई के बदले में बुराई करने में नुक़सान है।

दोहा

भलयन से भला करन, यह जग का व्यौहार।
बुरयन से भला करन, ते बिरले संसार॥

(२४)

एक अभ्यासी जब मरने लगा तो उसने मालिक से अर्ज़ किया कि अचरज मालूम होता है कि दोस्त की जान दोस्त लेवे। मालिक ने फ़रमाया कि ताज्जुब मालूम होता है कि दोस्त, दोस्त के दीदार और दर्शन से भागे। यह सुन कर वह ख़ुशी से मरने को तैयार हो गया।

(२५)

हज़ारों जीवों में से बहुत थोड़े ही परमार्थ में क़दम रखते हैं, और सैंकड़ों परमार्थियों में से कोई बिरले ही अपने सच्चे मालिक को पहिचानेंगे।

(२६)

सवाल व जवाब

(१) सवाल--हमारे सच्चे मालिक और निज पिता कौन हैं ?

जवाब--तुम्हारे सच्चे मालिक और निज पिता सत्त-पुरुष राधास्वामी हैं।

(२) सवाल--हमें क्योंकर यक़ीन हो कि हमारे सच्चे मालिक और निज पिता सत्तपुरुष राधास्वामी हैं।

जवाब--वे आप इस संसार में जीवों पर अति दया करके, संत सतगुरु रूप धारन करके प्रघट हुये और अपना भेद उन्होंने आप गाया। उनकी बानी और बचन के पढ़ने और सुनने से प्रतीत आ सक्ती है, जैसा कि परमेश्वर और ख़ुदा

का यक़ीन लोग वेद पुरान क़ुरान और अंजील के पढ़ने से करते आये हैं।

(३) सवाल--हमें क्योंकर यक़ीन हो कि सत्तपुरुष राधास्वामी का दर्जा, परमेश्वर और ख़ुदा से ऊँचा और बड़ा है ?

जवाब--उनकी बानी को वेद, पुरान, क़ुरान, अंजील वग़ैरा कुल्ल आसमानी किताबों से मिलान करने से।

(४) सवाल—मालिक का खोज हम कहाँ करें, क्योंकि कहते हैं कि मालिक सब जगह मौजूद है ?

जवाब—मालिक का खोज तुम अपने घट में करो, क्योंकि जो मालिक सब जगह है तो तुम में भी है। फिर तुम में तुभ से ज़्यादा नज़दीक है, ब-निसबत दूसरी जगह के।

(५) सवाल—मालिक हम में किस तरह है ?

जवाब—मालिक तुम में इस तरह है जैसे फूल में खुशबू, और दूध में घी, और काठ में अग्नि।

(६) सवाल—मालिक का दर्शन हम को किस तरह से हो सकता है ?

जवाब—मालिक का दर्शन तुम को सतगुरु से जुगत लेकर, अपना घट मथन करने से हो सक्ता है, जैसे कि घी का दर्शन दूध को तरकीव के साथ बिलोने से होता है, और इत्र ख़ालिस फूल में है और कई बार खींचने से निकलता है।

(७) सवाल—मालिक के दर्शन की हम को क्या ज़रूरत है ?

जवाब—मालिक तुम्हारा मिस्ल सूरज के है और तुम को रोशनी यानी ज़िंदगी उसी से मिलती है। ज्यों २ तुम उसके निकट जाओगे, तुम्हारी रोशनी बढ़ेगी, और जिस क़दर उससे दूर हटोगे, अँधेरे में गिरोगे। वह रोशनी महा चैतन्य और महा आनन्द स्वरूप है और सब सुखों का भंडार है और तारीकी यानी अँधेरा दुख रूप और चौरासी का घर है।

(८) सवाल—मालिक हममें कहाँ है !

जवाब—मालिक का तख़्त तुम्हारे मस्तक में है।

(९) सवाल—हमारे मालिक का क्या स्वरूप है।

जवाब—तुम्हारे मालिक का शब्द यानी चैतन्य और प्रकाश और प्रेम स्वरूप है।

(१०) सवाल–हमारा क्या स्वरूप है !

जवाब–तुम्हारा भी शब्द यानी चैतन्य और प्रकाश और प्रेम स्वरूप है।

(११) सवाल—फिर हम में और हमारे मालिक में क्या भेद है ?

जवाब—तुम में और तुम्हारे मालिक में ऐसा भेद है कि जैसे किरन और सूरज में, और जैसे बूंद और सिंध में।

बचन ५

वर्णन हाल सच्चे खोजी और परमार्थी और भी माया और उसकी रचना और घेर का, और ज़रूरत सतगुरु और उनके सतसंग की, और महिमा कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल की जिनके चरणोंमें सब को प्रीत और प्रतीत लानी चाहिये, और बिना जिनकी मेहर और दया के किसी का कुछ काम नहीं बन सक्का, और हाल उपदेश-करताओं का और नसीहत उनको और कुल्ल उपदेशियों यानी राधास्वामी मत के सतसंगियों को।

पहिला भाग

सच्चे खोजी और प्रेमी का हाल

१—सच्चे परमार्थ की कमाई दुरुस्ती से तब बन पड़ेगी जब सच्चा दर्द यानी प्रेम सच्चे मालिक से मिलने का दिल में पैदा होगा, और यह दर्द या प्रेम दो सूरतों में पैदा हो सक्का है।

२—पहिली सूरत यह है कि दुनिया के हाल पर नज़र करके उसकी और उसके सब सामान की

नाश-मानता देख कर, दिल उसकी तरफ़ से उदास हो जावे और खोज करे कि अमर स्थान और अमर सुख कहाँ है, और कैसे मिले, और जब तहक़ीक़ात करके मालूम होवे कि कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल का धाम जो ऊँचे से ऊँचा और गहरे से गहरा है, अमर और अजर है और वहीं पूरन आन्नद मिल सक्ता है और वही निर्माया यानी निर्मल चैतन्य देश है और उसके नीचे जितने देश हैं, उन सबमें शुद्ध यानी लतीफ़ और सूक्ष्म और मलीन यानी कसीफ़ और स्थूल माया, व्यापक है और निर्मल चैतन्य का ग़िलाफ़ हो रही है। इन देशों में पूरन आनन्द नहीं है, दरजे-ब-दरजे ऊँचे की तरफ़ आनन्द बढ़ता गया है और दुख और कलेश कम होता गया है। और मलीन माया के देश में सुख बहुत कम और दुख विशेष है और कुल्ल माया के देश में अबेर-सबेर जनम-मरम का भी चक्कर चल रहा है, यानी कुछ अर्से बाद ग़िलाफ़ (जिसको देह कहते हैं) बदलते रहते हैं, यह बात समझ कर कुल्ल मालिक के मिलने का और उसके धाम में पहुँचने का शौक़ दिल में पैदा हो जावे।

३--दूसरी सूरत यह है कि कोई इस शख़्स को महिमा कुल्ल-मालिक सत्तपुरुष राधास्वामी और उनके धाम की, जो कि अविनाशी और सर्व आनन्द और प्रेम का भंडार है,

सुनावे और इस दुनिया की नाश्मानता और इसके सामान का तुच्छ और दुखदाई होने का हाल समझावे और जुगत इस माया देश को छोड़ कर अपने निज घर में जाने की बयान करे, और इस हाल को सुन कर मन इस दुनिया से उदास और बरदाश्ता होकर घर की तरफ़ चलने और अपने सच्चे माता-पिता राधास्वामी दयाल से मिलने का जतन करने का इरादा करे।

४—ऐसे खोजी को तलाश संत सतगुरु या साधगुरू की, जो कि कुल्ल-मालिक और निज घर और उसके रास्ते के कुल भेद से वाक़िफ़ हैं और जुगत चलने की समझा कर उसकी कार्रवाई करा सक्ते हैं, ज़रूर करनी पड़ेगी, क्योंकि और किसी जगह या किसी मत में या विद्यावान और बुद्धिवानों के बचन से उसको तसल्ली हरगिज़ नहीं आवेगी।

५—ऐसे शौक़ीन और खोजी की हालत ऐसी होगी कि जैसे कोई बालक अपने माँ-बाप से बिछुड़ कर किसी ग़ैर देश और ग़ैर आदमियों में जा पड़ता है और वहाँ उसको किसी तरह से चैन नहीं आता, चाहे कैसी ख़ातिर-दारी उसकी की जावे और माँ-बाप के वियोग का दर्द सताता रहता है और उनसे मिलने के वास्ते तड़प और बेकली मन में रहती है।

६—जब ऐसा खोजी तलाश करके संत सतगुरु या

साधगुरू के सनमुख आवेगा, उस को उन के बचन सुनते ही और दर्शन करते ही निहायत प्रेम उनके चरणों में पैदा होगा, और उनके वचन जो सच्चे माँ-बाप यानी कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल और उनके धाम की महिमा से भरे हुए होंगे, और रास्ते का भेद और चलने की जुगत का उनमें बराबर ज़िक्र होगा, उसको निहायत प्यारे लगेंगे, क्योंकि उसके दिल में फ़ौरन यक़ीन हो जावेगा कि वे ज़रूर एक दिन उसको निज धाम में पहुँचा कर सच्चे मालिक से मिलावेंगे।

७—ऐसे खोजी के मन में संसार और उसके सामान और कुटुम्ब-परिवार की तरफ़ से किसी क़दर वैराग खोज की हालत में पैदा हो जावेगा। और जब संत सतगुरु या साधगुरू के बचन चित्त देकर सुनेगा, तब वह वैराग तेज़ और क़ायम हो जावेगा और अभिलाषा दुनिया की तरफ़ से हटती और कुल्ल-मालिक के चरणों में पहुँचने की दिन २ बढ़ती जावेगी।

८—ऐसा खोजी संत सतगुरु के बचनों को सुन कर और उनके मुवाफ़िक़ अपनी और दुनिया की हालत की जाँच करके फ़ौरन उनके चरणों में प्रतीत लावेगा और जब उनकी जुगत का कोई दिन अभ्यास कर के अपनी हालत अंतर में बदलती हुई देखेगा, तब दिन-दिन प्रीत उनके चरणों में

बढ़ाता जावेगा और तन-मन-धन से उमंग के साथ सेवा करेगा और शौक़ के साथ सतसंग उनका, जो कि उसके अंतर अभ्यास में मदद देने वाला है, जारी रक्खेगा।

९—जगत के जीव, और भी विद्यावान और बुद्धिवान, असल में अजान हैं। उनको सच्चे मालिक और उसके धाम की और उससे मिलने की जुगत की बिलकुल ख़बर नहीं है। रास्ते में आत्मा परमात्मा या ब्रह्म में अटक रहे हैं और उसका भी भेद पूरा पूरा नहीं जानते, और मिलने की जुगत ऐसी कि जिसका अभ्यास सब कोई कर सके, इन के पास नहीं है। पर यह सब संत मत का हाल सुन कर अपनी मूर्खता से उसकी निंदा करते हैं और संतों पर तान मारते हैं और आप तीर्थ, व्रत और मूर्ति वग़ैरा में भरम रहे हैं। सच्चा खोजी ऐसे लोगों की निंदा और तान पर ज़रा भी तवज्जह नहीं करेगा, क्योंकि जब उसने थोड़े दिन सतसंग करके संत मत को ब-ख़ूबी समझ लिया है तो उसको सब मतों का हाल और उनका ओछापन ज़ाहिर हो जावेगा, और उन लोगों के भरमाने और भुलाने से नहीं भरमेगा बल्कि उनको नादान और अभागी समझ कर उनसे परमार्थी मेल नहीं रक्खेगा।

१०—दुनिया के भोग-विलास और नामवरी वग़ैरा की चाह उसके दिल में बहुत कम हो जावेगी या बिल्कुल

नहीं रहेगी क्योंकि उसको कोई दिन सतसंग और अंतरी अभ्यास करके साफ़ मालूम हो जावेगा कि सब चीज़ें रास्ते में अटकाने वाली और निज घर से हटाने वाली हैं। वह किसी के भरमाने और उन चीज़ों का लोभ दिलाने से नहीं भरमेगा और अपनी भक्ति से नहीं डिगेगा।

११—ऐसे खोजी भक्त के मन में दिन २ चाव कुल्ल-मालिक के दर्शन और उसके धाम में पहुँचने का बढ़ता जावेगा और जिस क़दर कि नित्त अभ्यास करके उसको अंतर में रस मिलता जावेगा, उसी क़दर उसकी प्रीत-प्रतीत चरणों में मज़बूत होती जावेगी और कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु की दया उस पर दिन २ बढ़ती जावेगी और अंतर में उसको परचे मिलते जावेंगे और इस तरह कमाई करके वह एक दिन माया के घेर के पार हो कर और धुर धाम में पहुँच कर परम आनन्द को प्राप्त होगा।

दूसरा भाग

माया और उसके ग़िलाफ़ों का हाल

१२—मालूम हो कि इस देश में चैतन्य की धार यानी सुरत, माया के ग़िलाफ़ों में गुप्त होकर कार्रवाई मन और इन्द्रियों के वसीले से कर रही है और इन ग़िलाफ़ों के संग अपनपौ बाँध कर और बाहर के जड़

पदार्थों में मन लगा कर अनेक तरह के दुख-सुख सह रही है। सो जब तक कि इन ग़िलाफों से किसी क़दर छुटकारा नहीं होगा, तब तक दुख-सुख और जनम-मरन के चक्कर से बचाव नहीं हो सक्ता। और इन ग़िलाफों से छूटने की जुगत सिर्फ़ संत यानी राधास्वामी मत में आसान तरीक़े से खोल कर कही है। उसकी कमाई से यह जीव अपना आहिस्ता २ छुटकारा होता हुआ आप देख सकता है और उसी क़दर अपना दुख-सुख से बचाव भी परख सक्ता है। और किसी तरकीब से यह फ़ायदा पूरा २ और आसनी के साथ बग़ैर घर-बार और रोज़गार के छोड़ने के, हासिल नहीं हो सकता। और राधास्वामी मत में किसी का घरबार और रोज़गार छुड़ाया नहीं जाता और जो जुगत कि बताई जाती है, ऐसी भारी है कि उसके अभ्यास करने से सहज में सब काम बन सकता है। लेकिन थोड़ा सच्चा शौक़ और प्रेम दरकार है। फिर अभ्यास करके वही प्रेम दिन २ बढ़ता जावेगा और एक दिन पूरा काम बना कर छोड़ेगा।

१३—यह बात सच्चे परमार्थियों को अच्छी तरह समझ लेनी चाहिये कि इस दुनिया में दो पदार्थ हैं—एक चैतन्य और दूसरा जड़। चैतन्य वही सुरत की धार है कि जो इस देश में कुल्ल रचना की सम्हाल कर रही है और

जड़ पदार्थ की प्रेरक है। बग़ैर उसके, जड़ पदार्थ कुछ काम नहीं दे सकता। यही चैतन्य धार सत्त और ज्ञान और आनंद स्वरूप है, और जड़, बर-ख़िलाफ़ इसके, असत्त और तम और दुख रूप है, यानी इसका रूप-रंग सुरत-चैतन्य की सत्ता से क़ायम है। और जब उसकी सत्ता खिंच जावे, तब उसके रंग का अभाव हो जाता है।

१४—यह समझौती लेकर कुल्ल सच्चे परमार्थियों को मुनासिब और लाज़िम है कि जड़ पदार्थों से आहिस्ता आहिस्ता अपना नाता तोड़ते जावें या रिश्ता ढीला करते जावें, और विशेष चैतन्य से अपना मेल बढ़ाते जावें, तो दिन २ आनन्द और सच्चा ज्ञान बढ़ता जावेगा और दुख और भूल और भरम यानी तम घटता जावेगा। और यह कार्रवाई दुरुस्ती और आसानी के साथ सिर्फ़ सुरत-शब्द मार्ग की कमाई से हो सकती है।

१५—क्योंकि और मतों में चलने और चढ़ने की आसान जुगत जारी नहीं है और वे सब या तो बाहर जड़ निशानों जैसे तीरथ-मूरत वग़ैरा में अटक रहे हैं या चैतन्य की विद्या-बुद्धि से समझौती लेकर और अपने तईं वही रूह समझ कर (यानी समान और विशेष चैतन्य का भेद न करके) जहाँ के तहाँ बैठ रहे हैं, इस सबब से

उनकी निवृति माया के घेर और देहियों के दुख-सुख और जनम-मरण से मुमकिन नहीं है।

१६—जिस क़दर ग़िलाफ़ यानी परदे सुरत-चैतन्य की धार पर, निर्मल चैतन्य देश से उतार के समय चढ़े हैं, उनका भेद मुफ़स्सिल राधास्वामी मत में बयान किया गया है। और मतों में यह भेद साफ़ तौर पर बिलकुल ज़ाहिर नहीं किया है। और सबब इस का यही है कि उन में सुरत के चलने और चढ़ने और निज धाम में पहुँचाने का बिलकुल ज़िक्र नहीं है। चैतन्य को सर्व व्यापक मान कर वे जहाँ के तहाँ उसकी समझौती (बजाय अभ्यास करने के) विद्या बुद्धि की मदद से हासिल करके तृप्त हो गये, यानी बुन्द चैतन्य को पिंड में ही सिंध रूप मान कर निश्चिन्त हो गये।

१७—ग़िलाफ़ तीन क़िस्म के हैं। पहले दर्जे की रचना में रूहानी ग़िलाफ़, जहाँ कि चैतन्य ही चैतन्य है और माया नहीं है। दूसरे दर्जे में शुद्ध माया के मसाले के ग़िलाफ़, जहाँ ब्रह्म सृष्टि है। और तीसरे दरजे में मलीन माया के मसाले के ग़िलाफ़, जहाँ कि देवता और मनुष्य और चार खान की रचना है। और फिर हर दरजे में ग़िलाफ़ों की तीन २ क़िस्में हैं--स्थूल, सूक्षम और कारण, यानी एक दरजे का स्थूल ग़िलाफ़ नीचे के दरजे के कारण

ग़िलाफ़ से भी ज़्यादा सूक्षम है। और बाक़ी का हाल इसी तरह समझ लेना चाहिये।

१८—जब तक कि सुरत, ग़िलाफ़ों में बर्त रही है, तब तक उसकी भक्ति मालिक के चरणों में "भेद-भक्ति" कहलाती है, यानी सेवक और स्वामी और प्रेमी और प्रीतम यानी आशिक़ और माशूक़ का भाव क़ायम रहता है। और जब धुर-पद यानी बे-ग़िलाफ़ मुक़ाम में सुरत पहुँचे, तब "अभेद-भक्ति" जिसका सच्चा और पूरा ज्ञान कहना चाहिये, कहलाती है और इस जगह पर प्रेमी को संत मत में ऐसी ताक़त हासिल हो जाती है कि वह जब चाहे अपने प्रीतम से मिल जावे और जब चाहे तब न्यारा होकर उसके दर्शन का आनन्द लेवे। यह स्थान असली अरूप और अरंग और अनाम पद का है। बाक़ी नीचे के दरजों में जहाँ-कहीं जिस-किसी ने अनाम और अरूप पद थापा है, वह असली अरूप और अनाम और अरंग नहीं है। इस सबब से और मत वालों ने धोखा खाया, क्योंकि हर दरजे में हर एक स्थान पर रूप और अरूप और लोक और अलोक मौजूद हैं और दोनों मिल कर रचना की सम्हाल कर रहे हैं।

१९—चैतन्य, बे-ग़िलाफ़, अपने में आप मगन रहता है। और जहाँ कि वह ग़िलाफ़ में है, वहाँ वह औज़ारों यानी इन्द्रियों के वसीले से बाहर की कार्रवाही करता है, और

भी अपने से विशेष चैतन्य का रस और आनन्द लेता है। लेकिन ग़िलाफ़ का संग करके यानी मेल के सबब से जो दुख-सुख लाज़मी हैं, उनका भी भोग करता है। और जब वह ग़िलाफ़ पुराना और बेकार हो जाता है, तब उसको छोड़ एक दूसरा ग़िलाफ़ धारण करता है। इस सबब से जनम-मरण और दुख-सुख का चक्कर हमेशा जारी रहता है।

२०—यह कैफ़ियत सिर्फ़ माया देश में है यानी रचना के दूसरे और तीसरे दरजे में वाक़ै होती है। अव्वल दरजे में जहाँ कि रूहानी ग़िलाफ़ हैं, कभी तग़ैयुर और तबद्दुल[1] नहीं होता। और जो कि चैतन्य आनन्द स्वरूप है, इस वास्ते उसके ग़िलाफ़ भी आनन्द रूप हैं। इस वास्ते संत फ़रमाते हैं कि जैसे बने, तैसे माया के घेर के पार दयाल देश यानी अव्वल दरजे में जाना चाहिये। तब अमर और पूरण आनन्द प्राप्त होगा।

तीसरा भाग

अपने वक़्त के सतगुरु की ज़रूरत और उनके सतसंग का फ़ायदा

२१—संत अथवा राधास्वामी मत में वक़्त के सत-गुरु की निहायत ज़रूरत है, क्योंकि बग़ैर उनके मिलने के, भेद कुल्ल-मालिक और रास्ते का, और जुगत चलने की

१—अदल-बदल

और हाल उन संजमों का जिनकी निगह-दाश्त प्रेमी अभ्यासी को ज़रूरत है, मालूम नहीं हो सकता। यह भेद और हाल वही जानता है कि जो अपने घट में रास्ता तै करके धुर मुक़ाम तक या किसी रास्ते के स्थान तक पहुँचा है, या थोड़ा-बहुत वह शख़्स जानेगा जिसने पूरे गुरू से मिल कर कोई दिन उनका सतसंग किया है, और उनसे उपदेश लेकर अभ्यास कर रहा है। सिवाय इन तीन के (१) संत सतगुरु और (२) साधगुरू और (३) पूरे गुरू के सच्चे सतसंगी के, और कोई यह भेद नहीं जान सकता। इस वास्ते जिस-किसी के दिल में सच्चे मालिक की खोज और उसके मिलने का शौक़ पैदा हुआ है, उसे जब तक इन तीनों में से कोई नहीं मिलेगा तब तक उसको शान्ति नहीं आवेगी और न उसका रास्ता चलना शुरू होगा।

२२—जब खोजी प्रेमी ऐसे गुरू का सतसंग करेगा, तब उसको सच्चा हाल इस रचना का मालूम पड़ेगा और यह कि किस से उसको सच्ची प्रीत करनी चाहिये, और कहाँ २ उसका मन बे-फ़ायदा बंध रहा है, और कैसे उसका छुटकारा सहज में हो सकता है, और यह कि जो सुख और रस यहाँ के भोगों में हैं, वह तुच्छ और नाशमान हैं और परम सुख और परम आनन्द का भंडार अपने घट में

मौजूद है, पर जुगती की कमाई से आहिस्ता २ मिल सकता है और यह कि कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल का तख़्त भी घट में मौजूद है, और किस तरह थोड़ा-बहुत उनका जलवा अंतर में नज़र आ सक्ता है, और कैसे उनकी मेहर और दया, वास्ते तै करने रास्ते और प्राप्ति आनन्द और उसकी दिन २ तरक़्क़ी के, हासिल हो सकती है।

२३—सच्चे मालिक के चरणों में सच्ची प्रीति और प्रतीत सिर्फ़ सतगुरु ही के संग से पैदा हो सकती है। और दिन २ उसकी तरक़्क़ी उनकी मेहर और दया और जुगती की कमाई से मुमकिन है। और संसार और उसके भोगों से सच्चे वैराग का दिल में पैदा होना और उसकी तरक़्क़ी भी सतगुरु ही के संग से होवेगी। और तरह से जो किसी के चित्त में किसी वक़्त थोड़ा-बहुत वैराग पैदा भी हुआ, तो वह क़ायम नहीं रहेगा और न उसकी तरक़्क़ी होगी।

२४—सच्चे मालिक की मौजूदगी और उसके हर वक़्त हाज़िर नाज़िर होने का यक़ीन भी संत सतगुरु ही के संग के हासिल होगा। और उनकी दया और जुगती की कमाई से वही यक़ीन बढ़ता जावेगा और एक दिन पूरे दरजे तक पहुँचा देगा। ऐसा सच्चा और पूरा यक़ीन,

और किसी के संग से या पौथियाँ पढ़ कर हासिल नहीं हो सक्ता ।

२५—संतों की जुगती की कमाई भी सतगुरु ही के संग से दुरुस्ती के साथ बन पड़ेगी। और जब तक कि काम पूरा न बने, वह अभ्यास जारी रहेगा। और किसी तरह सुरत-शब्द का अभ्यास बन पड़ना दुरुस्ती से और तरक़्क़ी के साथ जारी रहना और रोज़-ब-रोज़ उसका फ़ायदा नज़र आना मुमकिन नहीं है, क्योंकि काल और कर्म और माया और उसके भोग बड़े ज़बर्दस्त हैं, कभी न कभी अभ्यास में विघ्न डाल कर, या भर्म उठा कर, उसको छुड़वा देंगे या अभ्यासी को ललचा कर भोगों में या मान-बड़ाई में फँसा कर उसका रास्ता चलने का रोक देंगे। जिस-किसी के सिर पर पूरे गुरु का पंजा रहे, उससे यह काम आख़ीर तक दुरुस्त बनता चला जावेगा, नहीं तो थोड़े दिन अभ्यास करके और फिर किसी न किसी चक्कर में पड़ कर और रास्ते में थक कर रह जावेगा ।

२६—शब्द की महिमा और सुरत-शब्द मार्ग की क़दर भी जैसी कि चाहिये, सतगुरु ही के संग से आवेगी। और वैसे तो हर एक मत में शब्द की थोड़ी-बहुत महिमा करी है, पर भेद रास्ते का, और जुगत उसके अभ्यास की, चढ़ाई के साथ, किसी मत में नहीं पाई जाती ।

२७—जो भाग से सतसंग सतगुरु का कुछ अर्से तक प्राप्त हो जावे तो बहुत ग़नीमत है, नहीं तो जितने दिन बन सके, एक दफ़े ज़रूर उनके सतसंग में हाज़िर रह कर फ़ायदा उठावे, यानी बचन उनके चेत कर सुने और समझे और विस्तार करके उनका मनन और विचार करे।

चौथा भाग

वर्णन भेद जीवों की समझ और अधिकार का

२८—जीवों की तीन क़िसमें हैं, उत्तम, मध्यम और निकृष्ट, और इसी तरह बुद्धि और समझ भी तीन क़िस्म की हैं, एक तेलिया, दूसरी मोतिया, तीसरी नमदा (मोटा ऊनी बिछौना)।

(१)—पहिली, यानी तेलिया का ख़वास यह है कि जैसे तेल की एक दो बूंदें पानी में डालें तो वह फैल कर तमाम पानी को घेर लेती हैं, इसी तरह उत्तम अधिकारी बचन सुन कर उनका आप ही आप विस्तार करके समझता है और अपने फ़ायदे की बात को छाँट कर ग्रहण करता है।

(२)—दूसरी, मोतिया बुद्धि कि जैसे मोती में जिस क़दर सूराख़ किया जावे, वह उसी क़दर क़ायम रहता है, यानी मध्यम अधिकारी ज़िस क़दर बचन सुनता है, उसको वैसा ही अपने मतलब के मुआफ़िक़

छाँट कर याद कर लेता है, लेकिन विस्तार नहीं कर सक्ता।

(३)—तीसरी, नमदा बुद्धि जैसे नमदे में सूये से सूराख़ किया गया, तो सूराख़ होता हुआ तो नज़र आया पर फ़ौरन ही छिप गया, ऐसे ही निकृष्ठ अधिकारी बचन सुनते और समझते तो मालूम होते हैं, पर वे उनको फ़ौरन ही भूल जाते हैं।

२६—उत्तम अधिकारी को थोड़े दिन के सतसंग से बहुत फ़ायदा हासिल हो सकता है, क्योंकि वह दो मूल बातों को समझ कर उनका विस्तार और अपनी सम्हाल थोड़ी-बहुत हर सूरत और हर हालत में आपही अपनी निर्मल बुद्धि से कर सक्ता है और वे दो मूल बातें ये हैं :—

(१)—सुरत की बैठक जाग्रत के समय नेत्रों में है और यहाँ से धार जिस क़दर अंतर में ऊँचे की तरफ़ को, शब्द और स्वरूप के आसरे, खिंचेगी यानी पुतली उलटाई जावेगी, उसी क़दर देह और संसार से बन्धन ढीला होता जावेगा, यानी इधर से बे-ख़बरी और उधर की तरफ़ होशियारी के साथ रस और आनन्द मिलता जावेगा। इस काम को ज़रूरी और मुफ़ीद समझ कर जिस

क़दर बन पड़ेगा, उत्तम अधिकारी हमेशा जारी रक्खेगा, बल्कि आहिस्ता आहिस्ता उसमें तरक़्क़ी करेगा।

(२)—मन और इन्द्रियों की धारें बाहरमुख जारी हो रही हैं और इच्छा यानी ख़्वाहिश के साथ ये धारें पैदा होती हैं और पुतली के उलटाने यानी मन और सुरत की धार को अन्दर में ऊपर की तरफ़ चढ़ाने में, वे तरंगों की धारें विघ्नकारक हैं। इस वास्ते सिर्फ़ ज़रूरी और मुनासिब तरंगें उठानी चाहियें, और इन्द्रियों की धारों को ज़रूरी कामों के वक़्त जारी रखना, और फ़िज़ूल और ग़ैर-ज़रूरी और ना-मुनासिब ख़्यालों और कामों की तरंगों को अन्तर और बाहर रोकना, ख़ास कर अभ्यास के वक़्त, और आम तौर पर हर वक़्त, ज़रूर चाहिये।

३०—इस बात को समझ कर उत्तम अधिकारी अपनी सम्हाल, हर वक़्त, मुनासिब तौर पर रख सक्ता है। जो मुआफ़िक़ पुराने स्वभाव ओर आदत के, भूल और चूक हो जावे तो कुछ मुज़ायक़ा नहीं, फिर होशियार होकर सम्हाल करना चाहिये। इसी तरह कोई अर्से की कोशिश के बाद मन और इन्द्रियाँ दुरुस्ती के साथ बर्तने लगेंगी।

३१—मध्यम अधिकारी को सतसंग कुछ ज़्यादा अर्से

तक करना चाहिये। तब वह बचनों को सुन कर और समझ कर और थोड़ा-बहुत अन्तरी अभ्यास करके, और भी उत्तम और मध्यम अधिकारियों को जो सतसंग अर्से से कर रहे हैं या सतसंग में आते-जाते रहते हैं, देख कर, क़ाबिल इसके हो जावेगा कि दूर रह कर और राधास्वामी दयाल की दया का बल लेकर अपनी सम्हाल थोड़ी-बहुत कर सके, और जिस बात में कोई दिक़्क़त या विघ्न या मुशकिल पेश आवे तो चिट्ठी भेज कर सतगुरु से हिदायत मुनासिब वक़्तन्-फ़वक़्तन् हासिल करता रहे।

३२—निकृष्ट अधिकारी को बहुत अर्से तक सतसंग करने और उत्तम और मध्यम अधिकारियों की हालत देखने से कुछ फ़ायदा होगा, जो वह थोड़ी होशियारी और शोक़ के साथ इस काम को करेगा, और दूरी में उत्तम या मध्यम अधिकारी के सतसंग और मदद से उसका भी थोड़ा-बहुत निरवाह हो जावेगा और रफ़्ता २ मध्यम अधिकारी के दरजे पर आ जावेगा।

३३—जो लोग सच्चा शौक़ परमार्थ का नहीं रखते पर सच्चे शौक़ीनों के साथ किसी लपेट से संतों के सतसंग में आगये हैं, तो उनको भी कुछ थोड़ा फ़ायदा होगा। लेकिन जब तक वे चेत कर होशियारी के साथ सतसंग और अन्तर अभ्यास नहीं करेंगे, तब तक उनकी हालत नहीं

बदलेगी। इन लोगों को उत्तम या मध्यम अधिकारियों का संग काफ़ी होगा, क्योंकि सतगुरु के सतसंग की ताक़त और लियाक़त उनमें कम होगी।

३४—ख़ुलासा यह है कि जब तक जीव का ज़बर झुकाव संसार की तरफ़ रहेगा, और मन में वासना भोग और बिलास और उसकी तरक़्क़ी की रहेगी, तब तक वह संतों के सतसंग और उनकी जुगती के अभ्यास से गहरा फ़ायदा नहीं उठा सक्ता कि जिससे उसकी हालत जल्द बदले और परमार्थ का रस बराबर अन्तर में पावे।

३५—जो कोई सच्चा दर्दी परमार्थी है, वह राधास्वामी मत की पोथियों को ग़ौर से पढ़ कर बहुत फ़ायदा उठा सक्ता है, और चिट्ठी के वसीले से उपदेश हासिल करके, अभ्यास में, राधास्वामी दयाल की दया से भजन और ध्यान का भी रस ले सक्ता है, और अपना हाल वक़्तन फ़वक्तन सतगुरु या उत्तम अधिकारी को लिख कर और हिदायत मुनासिब लेकर अभ्यास में तरक़्क़ी भी कर सक्ता है। पर कितनी ही बातें राधास्वामी मत और उसके अभ्यास की बाबत ऐसी हैं कि वे सिर्फ़ ज़बानी समझाई जा सक्ती हैं और लिखने में किसी न किसी क़िस्म की ग़लती या धोखा हो जाने का ख़ौफ़ है। इस वास्ते ऐसे परमार्थी को भी ज़रूर और लाज़िम है कि अगर ज़्यादा

न हो सके तो एक मर्तबा ज़रूर सतसंग में हाज़िर होकर और चंद रोज़ वहाँ ठहर कर जो कुछ कि शुभे और शक या किसी बात में समझ का फेर होवे, उसको दूर करावे, और जो बातें कि ज़बानी समझाई जा सक्ती हैं, उनको ब-खूबी समझ लेवे, ताकि उसके अभ्यास की तरक़्क़ी में दूरी की वजह से ख़लल न पड़े और कुल्ल-मालिक राधा-स्वामी दयाल और सतगुरु और सुरत-शब्द मार्ग की प्रीति और प्रतीत मज़बूत हो जावे।

३६—और जो ऐसे परमार्थी का किसी सूरत से सतसंग में आना न बन सके, तो जो वह सतगुरु का हुक्म लेकर किसी उत्तम अधिकारी परमार्थी से (जिसने कुछ अर्से सतगुरु का सतसंग किया है) मिलेगा और कोई दिन उसका सतसंग करेगा, तो उसको थोड़ा-बहुत उसी क़दर फ़ायदा हासिल हो सक्ता है, जितना कि सतगुरु के संग से।

३७—और जो उत्तम अधिकारी का भी सतसंग प्राप्त न होवे तो जब तक कि मौक़ा सतगुरु या उत्तम अधिकारी सतसंगी से मिलने का न बने, तब तक जो मध्यम अधिकारी सतसंगी मिल जावे (कि जिसने सतगुरु का सतसंग किया है) तो उसी के संग, अपनी परमार्थी कार्रवाई सतगुरु से चिट्ठी के ज़रिये से उपदेश लेकर

जारी करे। इस तरह से उसको किसी क़दर फ़ायदा हासिल होगा, और मुन्तज़िर रहे कि जब मौक़ा मिले तब उत्तम अधिकारी सतसंगी से या सतगुरु से जाकर ज़रूर मिले और कोई दिन उनका सतसंग कर के पूरा फ़ायदा हासिल करे।

पाँचवाँ भाग

कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल की महिमा, और फ़ायदा उनके चरणों में भाव के साथ प्रीत और प्रतीत करने का, और बयान उन हुक्मों का कि जो उन्होंने ज़बान-ए-मुबारक से फ़रमाये।

३८—राधास्वामी नाम कुल्ल-मालिक का है कि जिस का धाम ऊँचे से ऊँचा है और जहाँ माया का नाम और निशान भी नहीं है। और वह धाम तीन लोक के परे है और जिसके चरणों से "आदि शब्द" की धार निकली जिससे कुल रचना, पहिले दयाल देश और फिर तीन लोक की हुई। और यह पद यानी राधास्वामी धाम और कुल्ल रचना का नमूना घट २ में मौजूद है, यानी हर एक सुरत का सूत कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल के चरणों से अपने २ घट में शब्द यानी चैतन्य की धार के वसीले

से (जिस पर सुरत उतर कर पिंड में बैठी है) लग सक्ता है। और वह सुरत उनकी दया को अंतर में अभ्यास के समय, और भी दूसरे वक़्तों में, परख सक्ती है।

३६—ऊपर के बयान का मतलब यह है कि हर एक सुरत, शब्द की धार के वसीले से उतर कर पिंड में बैठी है, और संत सतगुरु अथवा साधगुरु या उत्तम अधिकारी सतसंगी से, भेद रास्ते और मंज़िलों का ले कर, और हर एक स्थान के शब्द का और जुगती चलने की दरियाफ़्त करके राधास्वामी दयाल की दया का भरोसा रख कर अपने घट में उसी धार को पकड़ कर चरणों की तरफ़ चल सकती है। और जो कि कुल्ल जीव यानी सुरतें, कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल की अंश हैं (जैसे सूरज और सूरज की किरन) और उनको हर एक पर निहायत दरजे की दया और प्यार मंज़ूर है, सो जब कोई विरह और प्रेम अंग लेकर सचौटी के साथ चरणों की तरफ़ भेद लेकर चलता है, वे उस पर अंतर में दया और मेहर फ़रमाते हैं और मदद देते हैं।

४०—इस समय में ख़ास कर जीवों पर ज़्यादा दया करना मंज़ूर है, क्योंकि कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल आप, नर चोले में संत सतगुरु रूप धारण करके प्रगट हुए और भेद अपने निज धाम और उसके रास्ते और मंज़िलों

का, और सहज तरीक़ा चलने का, कि जो आज तक किसी को मालूम नहीं हुआ, निहायत कृपा कर के आप प्रकट किया और जीवों को समझा-बुझा कर और अपनी दया के बल से उनकी सुरत को चढ़ा कर अपने देश में पहुँचाया और पहुँचाते हैं।

४१—और निहायत मेहर और दया करके उनहोंने हुक्म दिया कि जो कोई उनके चरणों में प्रेम और भक्ति धार कर उस तरीक़े का अभ्यास यानी विरह अंग लेकर ध्यान और भजन करेगा, तो वे अपने निज रूप से उसको अन्तर में बराबर मदद देकर और उसकी सुरत को आहिस्ता-आहिस्ता चढ़ा कर एक दिन धुर धाम में पहुँचा देंगे।

४२—और उनहोंने यह भी हुक्म दिया कि इस वक़्त में जिस क़दर कि पुराने तरीक़े अभ्यास के हैं, वे सब ख़ारिज हैं। पहिले तो वह सिर्फ़ संजम के तौर पर जारी किये गये थे। दूसरे, जो किसी में थोड़ी चढ़ाई का भी फ़ायदा है सो वह इस क़दर कठिन और ख़तरनाक है कि किसी जीव से दुरुस्ती के साथ उसका बन पड़ना मुशकिल बल्कि ना-मुमकिन है। और जो जीव कि उन्हीं तरीक़ों में अटके रहेंगे, वे बे-फ़ायदा अपना वक़्त और तन-मन उस कार्य में ख़र्च करेंगे और सच्ची मुक्ति और पूरा उद्धार उस कार्रवाई से हरगिज़ हासिल नहीं होगा। इस वास्ते, कुल्ल

जीवों को उनहोंने यही हुक्म फ़रमाया कि जो जुगत स्वरूप के ध्यान और नाम के अंतरी सुमिरन और शब्द के श्रवन की जारी फ़रमाई है, उसी के मुवाफ़िक विरह और प्रेम अंग लेकर अभ्यास करो, तब सच्चा और पूरा उद्धार होगा। और किसी तरह जनम-मरन और चौरासी के चक्कर से छुटकारा नहीं होगा।

४३—और वक़्त छोड़ने इस चोले के उनहोंने यह भी फ़रमाया कि कोई यह न समझे कि हम जाते हैं। नहीं, हम हर एक अभ्यासी सतसंगी के अंग-संग रह कर उसकी दुरुस्ती और तरक़्क़ी बराबर करेंगे, बल्कि पहिले से ज़्यादा फ़रमावेंगे। इस वास्ते हर एक प्रेमी भक्त और सुरत-शब्द के अभ्यासी को लाज़िम है कि राधास्वामी दयाल के चरणों में गहरी प्रीति करे और उनके चरणों की शरन लेकर अपना अभ्यास दुरुस्ती के साथ जिस क़दर बन सके, बराबर यानी बिला नाग़ा करता रहे और उनकी दया और मेहर अपने अंतर में परखता चले।

४४—और यह भी राधास्वामी दयाल ने फ़रमाया कि जिस किसी को सुरत-शब्द मार्ग का उपदेश दिया जाता है, उस वक़्त उसको सत्तपुरुष राधास्वामी का दामन पकड़ा दिया जाता है। सो जो कोई सचौटी के साथ थोड़ा-बहुत प्रेम अंग लेकर उस अभ्यास को बराबर करता रहेगा और

जहाँ तक मुमकिन है, मन के विकारों में नहीं बर्तेगा, तो उस पर सत्तपुरुष राधास्वामी दयाल अपनी दया फ़रमाते रहेंगे, यानी उसके मन और सुरत को आहिस्ता २ घट में ऊँचे की तरफ़ चढ़ाते जावेंगे और माया और काल के विघ्नों से उसकी रक्षा करते रहेंगे।

४५--सब जीव थोड़े-बहुत काल के क़रज़दार हैं यानी उन पर पिछले-अगले कर्म चढ़े हुए हैं। सो जो कोई सचौटी के साथ राधास्वामी दयाल की शरन में आया और सर्व-अंग करने उनका सेवक हो गया यानी और किसी में उसका परमार्थी भाव और इष्ट नहीं रहा, और सतसंग करके राधास्वामी दयाल के चरणों में प्रीत और प्रतीत शुरू करी है, तो ऐसे जीव को वे अपनी दया से अपनाते हैं और फिर उसकी सब तरह से सम्हाल और रक्षा दया के साथ फ़रमाते हैं, और उसके कर्म जिस क़दर जल्दी होता है, काटते हैं और दिन २ प्रीत-प्रतीत बढ़ा कर और अभ्यास में तरक़्क़ी देकर एक दिन अपने निज धाम में बासा देंगे।

छठवाँ भाग

वर्णन हाल राधास्वामी दयाल की दया का, वास्ते उद्धार जीवों के, और जारी करने उपदेश के, आम तौर पर।

४६—जिस किसी को कि कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल अपनी दया से साध या उत्तम प्रेमी सतसंगी की गति बख़्शें और उसके द्वारे और जीवों की परमार्थी दुरुस्ती करवावें तो वे उनके परम सेवक होंगे। और बाहर से जिस क़दर कार्रवाई समझाने और बुझाने और अभ्यास में मदद देने और भक्ति और प्रेम बढ़ाने की ज़रूरत है, वह, उन साध या प्रेमी सतसंगी के हाथों से करवाते हैं और अंतर में जिस क़दर कि मन और सुरत की चढ़ाई के वास्ते और काल और कर्म और माया वग़ैरा के विघ्नों के दूर करने के लिए मदद दरकार है, वह मेहर और दया से राधास्वामी दयाल अपने निज रूप से आप करते हैं, क्योंकि वक़्त उपदेश के, हर एक सुरत का सूत यानी रिश्ता उसके घट में राधास्वामी दयाल के चरणों से लग जाता है, और उसी रिश्ते के द्वारे परमार्थी अभ्यासी की सुरत की प्रार्थना वग़ैरा की ख़बर चरणों में पहुँच सकती है। और जब मौज होती है, तब दया की धार उसी रास्ते से उतर कर और अभ्यासी को रस देकर उसके प्रेम को बढ़ाती है।

४७—और जिस किसी को राधास्वामी दयाल अपनी मेहर से संत-गति बख़्शें यानी अपने धाम में बासा देवें, तो उसका निज रूप वही हुआ जो उनका है यानी शब्द-स्वरूप करके एकता हो गई और उसकी मौज वही

होगी जो उनकी मौज है। और जो उसके द्वारे जीवों का कारज करना मंज़ूर है, तो वह अंतर और बाहर उनकी मौज के अनुसार जो कार्रवाई जीवों के उद्धार के वास्ते मुनासिब और ज़रूर है, जारी करेगा।

४८—ख़ुलासा यह है कि कुल्ल कार्रवाई जीवों के उद्धार की, कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल की मौज के मुवाफ़िक़ जारी होती है। और वे आप निगरानी उस कार्रवाई की फ़रमा रहे हैं और अपनी ख़ास दया जिस २ जीव पर जब २ और जैसी २ मुनासिब होती है करते हैं, और दिन २ उसकी प्रीति और प्रतीत चरणों में अभ्यास के साथ बढ़ाते जाते हैं।

४९—इस वास्ते कुल्ल जीवों को जो कि राधास्वामी मत में शामिल हैं, चाहिए कि उनके चरणों का इष्ट मज़बूत बाँधें और उनके धाम में पहुँचने का इरादा ऐसा पक्का करें कि रास्ते में किसी स्थान पर थक कर या ललचा कर ठहरने की ख़्वाहिश न होवे, और जो जुगत चलने और चढ़ने की यानी ध्यान और भजन की उन्होंने जारी फ़रमाई है, उसका अभ्यास बराबर नेम और प्रेम के साथ हर रोज़ करते रहें, और जब २ मौक़ा मिले सतसंग भी करते रहें, और संशय और भरम दूर करके प्रीत और प्रतीत चरणों में बढ़ाते रहें तो राधास्वामी दयाल की मेहर और दया से आहिस्ता २ उनका कारज बन जावेगा।

सातवाँ भाग

वर्णन ज़ाहिरी आदाब और क़ायदा भक्ति का, राधास्वामी दयाल के चरणों में।

५०—कुल्ल जीवों को जो कि राधास्वामी मत में शामिल हैं मुनासिब और लाज़िम है कि जहाँ तक बन सके, एक दफ़े आगरे में आकर राधास्वामी बाग़ में राधास्वामी दयाल की समाध और उनके निशानों का जैसे पलँग और कुरसी और भजन करने की चौकी का, भाव सहित दर्शन करें और वहाँ मत्था टेक कर अपना भाग बढ़ावें, और समाध पर हार-फूल चढ़ावें, क्योंकि इन सब चीज़ों में जो कि उनकी सेवा में रही हैं, उनके चरणों की निर्मल और अमृत की धारा मौजूद है। राधास्वामी बाग़ के कुए का जो जल है, वह राधास्वामी दयाल का मुखामृत और चरणामृत है, उसको ज़रूर पान करें।

५१—राधास्वामी दयाल ने खुद अपनी ज़बान-ए-मुबारक से फ़रमाया है कि जो कोई राधास्वामी बाग़ में आवेगा, उसको भजन करने के बराबर फ़ायदा होगा, और जो वहाँ बैठ कर भजन और ध्यान करेगा, उसको विशेष फ़ायदा हासिल होगा, यानी राधास्वामी दयाल की ख़ास दया और मेहर का अधिकारी होगा।

आठवाँ भाग

वर्णन हाल उपदेश-करताओं का, और हिदायत मुनासिब उनके वास्ते

५२—जो कोई राधास्वामी दयाल के सेवकों में से जीवों को राधास्वामी मत का उपदेश देता है, उसके साथ उसके उपदेशी जो साध-भाव का बर्ताव करें तो मुज़ायक़ा नहीं, पर गुरु और सतगुरु और संत भाव कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल के चरणों में लाना चाहिये।

५३—और जो कोई बिलफ़र्ज़ किसी उपदेशक सत-संगी के साथ अपनी हठ से गुरु भाव का बर्ताव करे तो ख़ैर, लेकिन कुल्ल-मालिक और परम पुरुष पूरण धनी का भाव राधास्वामी दयाल के चरणों में ज़रूर लाना चाहिये। इसमें उसका कारज बहुत दुरुस्ती के साथ और निर्विघ्न बनेगा, क्योंकि राधास्वामी दयाल की मेहर और दया उसकी सम्हाल और रक्षा करेगी।

५४—जो कोई सतसंगी अभी आप ही अभ्यासी हैं और इजाज़त और हुक्म के साथ दूसरों को उनसे उपदेश दिलवाया जाता है, तो उनको मुनासिब है कि किसी अपने उपदेशी को अपने साथ साध भाव का बर्ताव न करने दें। सिर्फ़ इस क़दर काफ़ी होगा कि वे उसको अपना बड़ा भाई समझें, और जो कोई उपदेशक सतसंगी ब-नज़र अपने

बचाव के, इस क़दर बर्ताव भी मंज़ूर न करे, तो वह अपने उपदेशियों के साथ बराबरी यानी मित्र भाव का बर्तावा जारी रक्खे। और जो कोई उपदेशक सतसंगी किसी क़िस्म की बड़ाई का बर्ताव न मंज़ूर करे, तो उसके उपदेशियों को चाहिये कि उसके साथ मित्र भाव बर्तें, और साध भाव या बड़े भाई का भाव न बर्तें और संत सतगुरु और कुल्ल-मालिक का भाव राधास्वामी दयाल के चरणों में लावें।

५५—राधास्वामी दयाल के किसी सेवक को, जो जीवों को उपदेश राधास्वामी मत का देता है, किसी सूरत में अपने उपदेशियों पर दावा गुरुवाई का नहीं बाँधना चाहिये। यह स्वभाव और दस्तूर संसारी यानी लोभी और मानी उपदेश-करताओं का है। जो यही हालत राधास्वामी दयाल के सेवक की हुई तो वह भी संसारी गुरुओं में दाख़िल हुआ। फिर उसके उपदेश से जीवों को असली फ़ायदा बहुत कम होगा यानी उनके मन की गढ़त बिल्कुल नहीं होवेगी, और इस सबब से अभ्यास में तरक़्क़ी भी नहीं होगी, और कर्म, भर्म और संशय भी दूर नहीं होंगे, क्योंकि लोभी और मानी गुरू अपने सेवकों से आप डरता रहता है कि कहीं वे उसको छोड़ न देवें जिससे कि उसकी आमदनी में ख़लल पड़े।

५६—राधास्वामी मत में गुरु, सतगुरु और संत, नाम कुल्ल-मालिक का है और उपदेश-करता का दरजा साध या बड़े भाई या मित्र के मुवाफ़िक़ होना चाहिये। और इस में भी उपदेश-करता को लिहाज़ रखना चाहिये कि अपनी हालत को परखता चले और मान-बड़ाई और धन की चाह लेकर उपदेशियों से साध-भाव का बर्तावा मंज़ूर न करे, नहीं तो धोखा खावेगा और उसके उपदेश से जीवों को कुछ फ़ायदा हासिल न होगा।

५७—कोई अपने आप से गुरु नहीं बन सकता है। जब उपदेशियों को उसकी निसबत ऐसा भाव आवे और वे उसके मुवाफ़िक़ उससे बर्तावा चाहें, तो भी उसको मुनासिब है कि जहाँ तक बने, अपना बचाव करे। और जो वे निहायत दरजे की हठ करें, तो उनके प्रेम और भक्ति के बढ़ाने के वास्ते उनकी उमंग से कम दरजे की सेवा मंज़ूर करे और होशियारी और अहतियात रक्खे कि उसका मन फूलने न पावे यानी गुरुवाई का अहंकार न लावे, और किसी बात में बे-एहितयाती और बे-परवाही और निडरता के साथ बर्ताव न करे, नहीं तो अपना अकाज करेगा और जीवों को भी उससे थोड़ा-बहुत परमार्थी और दुनियावी नुकसान पहुँचेगा।

५८—जो उपदेश-करता आप सच्चा परमार्थी है, वह

आप भी निर्बंधँ होने का जतन करता रहेगा और अपने उपदेशियों के बंधनों को भी सहज २ ढीला करता और काटता जावेगा। न कि उपदेशियों के संग अपने वास्ते नया बंधन पैदा करेगा और उन पर दावा गुरुवाई का बाँध कर ज़ोर चलावेगा या किसी तरह की उनकी तहक़ीक़ात और तलाश में (जो उनके मन में अभी पूरी प्रतीत राधास्वामी मत को नहीं आई है या किसी तरह के शक और शुभे बाक़ी हैं या किसी और इष्टों में उनका मन अभी बँधा हुआ है) हर्ज और ख़लल डालेगा, इस ख़ौफ़ से कि कहीं वे उसको छोड़ न जावें और उसकी मान-बड़ाई और आमदनी में घाटा न होवे।

५६—यह हालत संसारी और नसली गुरुओं की है। और जो काई ऐसा बर्ताव करेगा, उससे जीवों का कारज कुछ नहीं बन सकेगा और न उनकी टेक पिछले इष्टों और कर्म-धर्म की काटी जावेगी, और न राधास्वामी मत की पूरी प्रतीत आवेगी, और न राधास्वामी दयाल के चरणों का पक्का और सच्चा इष्ट बँधेगा।

६०—जो हाल कि ऊपर लिखा गया, अभ्यासी सतसंगियों का है, जिन्होंने मान-बड़ाई और धन और भोगों के लालच से, वग़ैर हुक्म और इजाज़त के उपदेश करना शुरू कर दिया है, या थोड़ी सी इजाज़त, ख़ास शर्तों

के साथ हासिल करके और फिर उन शर्तों को भूल कर मनमुखता के साथ कार्रवाई उपदेश को, आम तौर पर जारी कर दी है। इन लोगों को अपने परमार्थी फ़ायदे का ख़्याल पेश-ए-नज़र रख कर ऊपर की हिदायत के मुवाफ़िक़ अमल-दरामद करना चाहिये। और जो कोई उनको उनकी नाक़िस कार्रवाई से आगाह करके, सलाह मुनासिब देवे, तो उसका बचन प्यार-भाव से सुनकर और अपने मन में ग़ौर और विचार करके, मानना चाहिये, न कि उससे नाराज़ होकर और उसको ईर्षावान समझ कर अपने उपदेशियों का ग़ोल जुदा बाँध कर और सतसंग से अलेहदा होकर अपनी गुरुवाई न्यारी चलाना।

६१—जो कितने ही साधू या गृहस्थ सतसंगी इस तरह की कार्रवाई करेंगे तो बहुत से जुदे २ ग़ोल हो जावेंगे और एक दूसरे का आपस में इत्तिफ़ाक़ न होगा। और जो वे साधु या गृहस्थ सतसंगी अपने आप को गुरू और सतगुरु थाप कर अपनी पूजा और मानता जुदी जारी करेंगे और राधास्वामी दयाल की संगत और गुरुद्वारे से, जो आगरे में है, अपना ताल्लुक़ न रक्खेंगे या मेल-मिलाप छोड़ देंगे। तो कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल का इष्ट और उनके चरणों की भक्ति आहिस्ता २ कम या गुम हो जावेगी। इसमें बड़ा भारी हर्ज राधास्वामी

मत के प्रकाश में वाक़ै होगा और यह भारी नुक़सान उनके सबब से पैदा होगा, जो ऐसी कारवाई मन-हठ और अहंकार और ख़ुद-मतलबी की बजह से शुरू करेंगे और समझौती पाने पर भी उस को अपने तौर से जारी रक्खेंगे ।

६२—मुनासिब तो यह है, बल्कि हर एक राधास्वामी मत के सतसंगी पर फ़र्ज़ है कि जो २ राधास्वामी दयाल का इष्ट रखते हैं और राधास्वामी धाम में पहुँचना चाहते हैं, वे सब आपस में भाई-चारे के तौर पर बर्ताव करें, और एक दूसरे से भाव और प्यार के साथ पेश आवें, न कि अपने २ उपदेशक की टेक बाँध कर कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल का इष्ट भी ढीला कर दें और एक दूसरे की ईर्षा करके आपस में विरोध पैदा करें । यह बड़ी लज्जा की बात है, और इस मत पर जो कि आम भाई-चारे का रिश्ता मज़बूत करने वाला है, भारी इलज़ाम लाती है, और कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल की मौज के बर-खिलाफ़ है ।

नवाँ भाग

हिदायत उपदेशियों को

क़िस्म पहिली

साधू और सतसंगियों के उपदेशियों को

६३—जिस किसी के मन में सच्चे मालिक के मिलने

और अपने पूरे उद्धार कराने की चाह है, उसको चाहिये कि जहाँ तक मुमकिन होवे, संत सतगुरु या साधगुरु से उपदेश लेवे। और जो वे न मिलें तो उनके सच्चे प्रेमी सतसंगी से, गृहस्थ होवे या विरक्त, उपदेश लेकर अभ्यास शुरू करे और राधास्वामी दयाल का इष्ट बाँधकर उनके चरणों में प्रीति और प्रतीत बढ़ावे। वे अपनी मेहर से उसका संजोग संत सतगुरु या साध गुरु से जब मुनासिब होगा, मिला देंगे।

६४—जो उसके मन में उमंग सेवा की पैदा होवे, तो तन और धन की सेवा राधास्वामी मत के साधू और सतसंगियों की, भाव के साथ करे, लेकिन मन राधास्वामी दयाल के चरणों में लगावे।

६५—उपदेश-करता को, वक़्त लेने उपदेश के, अपना गुरू न बनावे। लेकिन उसको साधन करने वाला समझ कर प्यार और भाव के साथ उसका सतसंग करे और जब २ उमंग होवे और वह मंज़ूर करे तो तन-धन की भी सेवा करे, और राधास्वामी दयाल के चरणों का इष्ट बाँध कर अपना अभ्यास जारी रक्खे और संत सतगुरु से मिलने की चाह मन में रक्खे, और जब मौज से वे मिल जावें तब उनसे गहरी प्रीति करे।

६६—जब संत सतगुरु से मेला होगा, तब इसको

घट में परचे मिलेंगे और बाहर से भी सतसंग में इसको रस विशेष आवेगा, और संशय और भरम सहज में दूर होते जावेंगे, और प्रीति और प्रतीत कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल के चरणों में, और भी सुरत-शब्द मार्ग की, बढ़ती जावेगी। इसी तरह आहिस्ता २ थोड़ी २ पहिचान संत सतगुरु की होती जावेगी।

६७—जो कोई उपदेश-करता उपदेशी पर दावा गुरुवाई का बाँधे या और किसी क़िस्म का ज़ोर या हुक्म चलावे या उसको खोज और तलाश से बाज़ रक्खे और उसके संग से सच्चे परमार्थी की हालत थोड़ी-बहुत न बदले यानी प्रीति और प्रतीत राधास्वामी दयाल के चरणों में बढ़ती न जावे, और संसार की तरफ से किसी क़दर वैराग या उदासीनता चित्त में न आवे, तो उस उपदेशक को सच्चा गुरू नहीं समझना चाहिए। उसके संग से उपदेशी का सच्चा और पूरा उद्धार नहीं होगा। ऐसी सूरत में उपदेशी को ऐसे उपदेशक में सिर्फ साध-भाव मानना चाहिये और पूरे गुरू का खोज, वास्ते अपने पूरे उद्धार के, जारी रखना मुनासिब है। और जब तक पूरे गुरू से मेला नहीं होगा, तब तक कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल, जिस क़दर मुनासिब होगा, ऐसे उपदेशी की सम्हाल फ़रमावेंगे और रफ़्ता २ सतगुरु से भी मेला करावेंगे।

६८—जब संत सतगुरु मिल जावें, तो उपदेशी सतसंगी को मुनासिब है कि पहले उपदेश-करता से भी मेल ब-दस्तूर जारी रक्खे। लेकिन जो वे उसको संत सतगुरु की भक्ति से हटावें या उसमें विघ्न डालें तो संत सतगुरु से अर्ज़ हाल करके, और उनकी आज्ञा लेकर, उस उपदेश-करता से आइन्दा को मेल-मिलाप ढीला कर दे या जो मुनासिब होवे, बिल्कुल मौक़ूफ़ कर देवे।

६९—जो वे उपदेश-करता सच्चा शौक़ परमार्थ का रखते होंगे तो वे आप भी सतगुरु से मिलेंगे और अपने उपदेशी को भी मिलावेंगे। और इसमें सबकी प्रीत परस्पर बढ़ेगी और राधास्वामी दयाल के चरणों में भक्ति ज़्यादा मज़बूत होगी। और जो वे उपदेशक मानी और लोभी हैं और अपने परमार्थी नफ़े-नुक़सान का कुछ ख़्याल नहीं करते, तो वे आप भी सतगुरु से नहीं मिलेंगे और जो वह उसका कहना नहीं मानेगा, तो उससे विरोध और लड़ाई करने को तैयार होंगे। ऐसे उपदेशक से सच्चे परमार्थी को मेल रखना मुश्किल होगा और उनसे एक न एक दिन नाता मुहब्बत का तोड़ना पड़ेगा और इस हालत में उस पर किसी क़िस्म का दोष नहीं आ सकता।

नवाँ भाग

क़िस्म दूसरी

नसीहत संतों के उपदेशियों को

७०—जिन लोगों ने कि संत सतगुरु या साध गुरू से उपदेश लिया है, उनको चाहिये कि संत सतगुरु या साध गुरू से गहरी प्रीति करें और होशियारी से उनका सतसंग करें और जिस क़दर कि अंतर और बाहर के सतसंग और परचों वग़ैरा से पहिचान उनकी होती जावे, उसी क़दर उनके चरणों में प्रीति और प्रतीत बढ़ाते जावे, और कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल के चरणों में पूरी प्रीति और प्रतीत लावें, तब कारज उनका दुरुस्त बनेगा क्योंकि निज स्वरूप संत सतगुरु और राधास्वामी दयाल का एक ही है।

७१—ज़ाहिर है कि कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल के चरणों में सतसंग करके और राधास्वामी मत और उसके भेद का निर्णय सुन कर पूरी प्रतीत आ सकती है और फिर प्रीति भी उनके चरणों में यानी अंतर शब्द स्वरूप में (जो उनका निज रूप है) की जा सकती है। और इस तरह अंतर अभ्यास और बाहर का सतसंग दिन २ शौक़ के साथ जारी रह सकता है।

७२--लेकिन संत सतगुरु और साध गुरू के चरणों में

एकाएक ऐसी प्रीति और प्रतीत (जब तक कि थोड़ी-बहुत उनकी पहिचान न आवे) नहीं हो सकती। और यह पहिचान, उनकी दया पर मौक़ूफ़ है, चाहे वे अंतर और बाहर परचे देकर जल्द उपदेशी की हालत को (जो वह सच्चा और उत्तम अधिकारी है) बदल देवें यानी उसको थोड़ा-बहुत प्रेम बख़्श देवें या जो वह मध्यम और निकृष्ट अधिकारी है, तो बाहर सतसंग और अंतर अभ्यास कराके आहिस्ता २ उसकी हालत बदलें। पर इन दोनों सूरतों में उपदेशी को लाज़िम और ज़रूर है कि कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल के चरणों में पूरी प्रतीत और उनकी दया का भरोसा लावे, तो उसको हर हालत में अंतर और बाहर सहारा मिलता रहेगा, और जब २ संत सतगुरु या साध गुरू की तरफ़ से उसका मन रूखा और फीका हो जावेगा, उस वक़्त राधास्वामी दयाल उसकी मदद फ़रमावेंगे, जो वह उनकी बानी का पाठ और अंतर अभ्यास यानी ध्यान और भजन करता रहेगा।

७३—सतगुरु स्वरूप में पूरा २ भाव और पूरी प्रतीत एक-बारगी आनी मुश्किल है, और फिर उसका बराबर एक रस क़ायम रहना निहायत कठिन है। इस वास्ते, जो कोई दानाई के साथ चाल चलेगा यानी कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल के चरणों में पूरी प्रीति और प्रतीत

करेगा, तो वह किसी वक़्त सतगुरु से क़तई बे-मुख नहीं होगा, क्योंकि देह रूप से सतगुरु और राधास्वामी दयाल जुदा मालूम होते हैं, लेकिन निज रूप यानी शब्द स्वरूप उनका एक ही है। तो जब कोई सतगुरु से रूखा-फीका हो गया और राधास्वामी दयाल के चरणों में उसका भाव ब-दस्तूर रहा, तो वह असल में सतगुरु से भी बे-मुख नहीं हुआ। सिर्फ़ उनके देह स्वरूप की तरफ़ उसका भाव घट गया, और ज़ाहिरी बर्ताव में रूखा-फीका हो गया, पर उनके शब्द स्वरूप को, जो राधास्वामी दयाल के चरणों में प्रीति और प्रतीत रही आई, ब-दस्तूर पकड़े रहा और उससे बे-मुखता नहीं हुई। इस सूरत में अंतर-अभ्यास और बानी का पाठ करने से जल्द या थोड़ी देर के बाद उसकी प्रीति सतगुरु के देह स्वरूप में, राधास्वामी दयाल की दया से, ब-दस्तूर हो जावेगी।

७४—इस वास्ते कुल्ल उपदेशी यानी सतसंगियों पर फ़र्ज़ है कि अपने फ़ायदे के वास्ते कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल के चरणों में गहरी और पूरी प्रतीत और प्रीति करें और सतगुरु स्वरूप में भी, जहाँ तक बन सके, पूरा प्यार और भाव लावें, और उनके देह स्वरूप को ऐसा समझें कि राधास्वामी दयाल अपने निज पुत्र यानी निज धारा के वसीले से आप उस स्वरूप में प्रवेश करके उनका

कारज जिस क़दर कि बाहर से सँवारना मंज़ूर है बनाते हैं, और अंतर में अपने निज रूप यानी शब्द स्वरूप से सम्हाल करते हैं।

७५—और राधास्वामी दयाल के देह स्वरूप में जिसको कि उन्होंने धारण करके राधास्वामी मत का प्रकाश किया और सहज जुगत मन और सुरत के चढ़ाने की सुरत-शब्द मार्ग से (जिससे जीव का सच्चा उद्धार मुमकिन है) प्रगट करी, पूरा भाव और प्यार लाना चाहिए। और बारम्बार उनका शुकराना अदा करना चाहिए कि अति दया करके, वास्ते जारी रखने उपदेश और उद्धार जीवों के, संत सतगुरु और साध गुरू और प्रेमी सतसंगी बनाते और पैदा करते जाते हैं। अगर संत सतगुरु के स्वरूप को पिता माना जावे तो राधास्वामी दयाल के स्वरूप को महा-पिता मानना चाहिए, क्योंकि वे संत सतगुरु और साध गुरू के बनाने वाले और पैदा करने वाले हैं और उन्हीं की मौज और दया की ताक़त से यह दोनों अपनी कार्रवाई जारी करते हैं, और उन्हीं का भरोसा रख कर जीवों को उपदेश, निज धाम में पहुँचने का, करते हैं और आप भी उसी धाम के बासी हैं।

७६—संत सतगुरु को कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल का पुत्र मानना चाहिए। सो जब किसी को उन की

थोड़ी-बहुत पहिचान आवे, तो उसको मुनासिब है कि संत सतगुरु के चरणों में पिता का भाव लावे और कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल के चरणों में (जो संत सतगुरु के पिता हैं) परम पिता या महा-पिता का भाव लावे। इस तरह उसकी प्रीति दोनों स्वरूपों में (यानी देह स्वरूप और शब्द स्वरूप में) दुरुस्ती के साथ क़ायम रहेगी और बढ़ती जावेगी।

७७—इस क़दर भेद जो ऊपर किया गया, उस हालत में मानना होगा कि जब किसी को थोड़ी-बहुत परख और पहिचान संत सतगुरु की आई है। नहीं तो, आम तौर पर कुल्ल सतसंगियों को, चाहे उन्होंने उपदेश संत सतगुरु से लिया है या किसी सतसंगी से, मुनासिब और लाज़िम है कि राधास्वामी दयाल को कुल्ल-मालिक यानी परम पुरुष पूरन धनी मान कर, उन्हीं के चरणों में प्रेम-प्रीति करें, और उनके शब्द-स्वरूप में भाव और प्यार लाकर, उमंग के साथ अन्तर-अभ्यास में लगें। तब आहिस्ता-२ उनकी दया की परख आती जावेगी। और फिर जो उप-देशक संत सतगुरु हैं, तो उनकी गति और महिमा की भी ख़बर पड़ती जावेगी और उनमें भी भाव और प्यार उस दरजे का, जो कि कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल के निज और प्यारे पुत्र में लाना चाहिए, आता जावेगा।

नवाँ भाग

क़िस्म तीसरी

हिदायत कुल्ल उपदेशी यानी राधास्वामी मत के सतसंगियों को

७८—कुल्ल जीवों को, जब कि वे राधास्वामी मत में शामिल होवें और उपदेश सुरत-शब्द मार्ग का लेकर अंतर-अभ्यास में लगें, लाज़िम है कि राधास्वामी दयाल को कुल्ल-मालिक और कुल्ल करता और सर्व-समर्थ और प्रेम और ज्ञान का भंडार समझें, और उनके देह स्वरूप को, जो उन्होंने धारण करके, राधास्वामी मत को प्रगट किया और सहज जुगत सुरत-शब्द मार्ग की, वास्ते चढ़ाने मन और सुरत के, बताई, कुल्ल-मालिक राधास्वामी का औतार स्वरूप समझें, और दोनों में गहरी प्रतीत और प्रीति लावें, और उनकी मेहर और दया का आसरा और भरोसा लेकर अभ्यास शुरू करें।

७९—और जो कि कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल अपने निज स्वरूप से कुल्ल के करता और धरता हैं और कुल्ल रचना उनके आधीन है, इस वास्ते सच्चे मन से उनके चरणों की ओट और शरन लेना हर एक सतसंगी पर फ़र्ज है। यानी सब कामों में उनकी मौज और दया का आसरा और भरोसा रखना चाहिए और उन्हीं को अपना

सच्चा हितकारी और उद्धार-करता समझ कर, उनका इष्ट और उनके चरणों में यानी उन के निज धाम में पहुँचने का इरादा पक्का और मज़बूत करना चाहिये। तब उससे अभ्यास दुरुस्ती से बनेगा और कुछ अंतर में रस भी आवेगा और दिन २ तरक़्क़ी होती जावेगी और शौक़ भी बढ़ता जावेगा।

८०—गुरु स्वरूप में जो कि देह धारी है, गहरा भाव और प्यार, जैसे कि कुल्ल-मालिक के चरणों में पैदा हो सकता है, आना बहुत मुश्किल है, जब तक कि सतसंग और अभ्यास करके उनकी थोड़ी-बहुत परख और पहिचान न आवे। इस वास्ते बिना पहिचान के, जो कोई उनकी महिमा करेगा, वह सुनी हुई या पढ़ी हुई होगी। और जब तक कि अंतर हिरदे से भाव और प्यार न उपजेगा, तब तक भक्ति के अंगों में, जैसा कि चाहिये, अंतर और बाहर दुरुस्ती और सचौटी के साथ नहीं बर्ता जावेगा।

८१—लेकिन जब किसी को अंतर में रस और आनन्द मिलेगा और शुकराने में सेवा की उमंग उठेगी, उस वक़्त जो वह राधास्वामी दयाल के साथ बर्ताव करना चाहे, उसको मुनासिब है कि संत सतगुरु या साध और सतसंगी के साथ थोड़ा-बहुत वही बतावा करे, क्योंकि राधास्वामी दयाल ने फ़रमाया है कि संत सतगुरु उनका

निज रूप है, और साध और सतसंगी उनके देह स्वरूप हैं। जो कोई उनकी सेवा करेगा वह राधास्वामी दयाल की सेवा में शुमार की जावेगी और उसका फल यानी भक्ति और प्रेम, वे अपनी मेहर से आप देवेंगे।

दसवाँ भाग

क़िस्म पहिली

जवाब बाज़े सवालों और संदेहों का, जो कि प्रेमी अभ्यासियों के मन में, निस्बत बर्ताव भक्ति के, सतगुरु स्वरूप और कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल के चरणों में, अक्सर पैदा होते हैं।

८१—जो कोई कहे कि राधास्वामी दयाल की बानी में जहाँ-तहाँ महिमा संत सतगुरु स्वरूप की कही है और यह कि जब तक कि गुरु स्वरूप में पूरा प्यार नहीं आवेगा तब तक शब्द यानी निज स्वरूप की प्राप्ति नहीं होगी, यह बचन सच्च है। लेकिन समझना चाहिये कि ऐसा भाव और प्यार गुरु स्वरूप में, जब तक कि सतसंग और अभ्यास करके कुछ अंतर में रस नहीं मिलेगा और थोड़ी-बहुत पहिचान नहीं आवेगी, नहीं आवेगा। और जब तक कि ऐसी हालत न होवे तब तक ब-दस्तूर मुख्यता प्रेम

और प्रीति की कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल के चरणों में करना चाहिये ।

८३—संत मत में प्रेम की भारी माहिमा है और सबब उसका यह है कि जहाँ जिसका सच्चा और पूरा प्रेम है, वहीं उसका तन-मन-धन सहित झुकाव होता है । और या तो वह आप, चल के, प्रीतम से मिलता है या प्रीतम उसको आप बुला लेता है या आप ही चल कर उससे मिलता है ।

८४—परमार्थ में जब किसी का सच्चा प्रेम, महिमा सुन कर, और जगत और उसके पदार्थों की नाशमानता देख कर, कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल के चरणों में आया, तब राधास्वामी दयाल दया करके अपने पुत्र यानी निज धारा के वसीले से, आप उस प्रेमी को चरणों में लगाते हैं, और रास्ते का भेद देकर उसको निज धाम में बुलाने और पहुँचाने के निमित्त जुगती के साथ अभ्यास कराते हैं । यह पुत्र यानी निज धारा का स्वरूप उन्हीं का देह स्वरूप है और इसका और उनका निज स्वरूप एक ही है । लेकिन जो कि देह स्वरूप की पहिचान कठिन है, इस सबब से प्रथम निज रूप की महिमा प्रेमी के हृदय में बसा कर, उसी में उसकी प्रीति और प्रतीत लगाते हैं और उसी स्वरूप से मिलने का जतन, यानी सुरत-शब्द मार्ग का अभ्यास कराते हैं ।

८५—निज स्वरूप की महिमा और बड़ाई हर हालत में ज़्यादा से ज़्यादा है, और प्रेमी का, बग़ैर उस स्वरूप को प्राप्ति के, कारज पूरा नहीं बन सकता है। इस वास्ते जो कार्रवाई मुवाफ़िक़ ऊपर की दफ़ै के उससे शुरू कराई गई, वह हर हालत में दुरुस्त है।

८३—लेकिन जो कि प्रेमी, संसारी रूपों में पहिले से लगा हुआ है और अटक रहा है और कुल्ल-मालिक के निज रूप को न तो देखा है और न उसके सतसंग का बचन सुन कर अच्छी तरह अनुमान कर सकता है, इस वास्ते जैसा चाहिये उसमें प्यार नहीं आ सकता।

८७—पर उसी निज स्वरूप का जो देह स्वरूप यानी संत सतगुरु रूप है, वह उन्हीं रूपों के मुवाफ़िक़ है जिन में कि प्रेमी अपने स्वभाव के मुवाफ़िक़ संसार में प्रीति लगाता आया है। इस सबब से जो थोड़ी-बहुत भी पहिचान संत सतगुरु की आ जावे, तो यह प्रेमी उनके स्वरूप में विशेष प्यार आसानी से ला सकता है, और अनेक तरह की सेवा तन, मन, धनसे करके उस प्यार को बढ़ा सक़ा है। और फिर उसी स्वरूप का अंतर में स्थान २ पर ध्यान करके और जब तक मेहर और दया से दर्शन पाकर अपने मन और सुरत को उनके चरणों के स्पर्श करने के निमित्त सहज में चढ़ा सक़ा है और आहिस्ता २ एक दिन धुर धाम में पहुँच सकता है।

८८—जिस वक़्त कि ध्यान की मदद से मन और सुरत सिमट कर किसी स्थान पर पहुँचेंगे या जम जायेंगे, तब शब्द भी साफ़ सुनाई देवेगा और उसकी धुन को पकड़ के सुरत जल्द चढ़ेगी।

८९—नीचे के स्थानों यानी षट चक्र में सिमटाव और चढ़ाई, बग़ैर मदद और ध्यान गुरु स्वरूप के, किसी क़दर मुमकिन है यानी वहाँ ध्यान मक़ामी स्वरूप का किसी क़दर काम दे सकता है। लेकिन ऊँचे मक़ामों की चढ़ाई सिर्फ़ शब्द के आसरे, बग़ैर मदद गुरु स्वरूप के मुश्किल है।

९०—जो कोई कहे कि गुरु स्वरूप नाशमान है, उसका ध्यान करना फ़िज़ूल है और वह पूरा फ़ायदा नहीं देगा, तो उसका यह जवाब है कि जो आकार गुरु स्वरूप का प्रेमी ध्यानी के अंतर में प्रगट होगा और होता है, वह स्वरूप चैतन्य अंतरजामी आप धारण करता है, और जो कि चैतन्य अविनाशी है और प्रेमी ध्यानी के सदा संग है, इस वास्ते वह स्वरूप भी अविनाशी है और सदा ध्यानीके संग रहेगा। जहाँ तक कि रूप और आकार की रचना है और जहाँ से कि अरूपी कारख़ाना शुरू हुआ है, वहाँ तक वही स्वरूप प्रेमी को पहुँचा देगा और अरूप से मिला देगा। और जिस क़दर कि चढ़ाई रास्ते में होती जावेगी, उसी

क़दर वह आकारी स्वरूप झीना और सूक्ष्म और ज़्यादा से ज़्यादा नूरानी होता जावेगा और एक दिन अरूप से मिला कर छोड़ेगा। और वहाँ पर सतगुरु का आकारी स्वरूप और उनका निज रूप (जो अरूप है) और प्रेमी सेवक का रूप भी जो ऊँचे देश में चढ़ाई के साथ सूक्ष्म और नूरानी होता चला गया है, सब एक यानी अरूप हो जावेंगे, और फिर निराकार यानी अरूपी स्वरूप से यह प्रेमी सेवक अपने कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल के दर्शनों के आनन्द और बिलास को प्राप्त होगा।

९१—इस तौर से सतगुरु स्वरूप में प्रेम और प्रीति लगाने से बहुत जल्द प्रेमी का बंधन बाहर के रूपों से ढीला और कम हो जाता है, और अंतर में चढ़ाई निज रूप से चल कर मिलने के निमित्त आसान हो जाती है।

९२—लेकिन हर सूरत और हालत में कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल और उनके निज स्वरूप की (जो कि अथाह और अपार और अनंत और प्रेम और ज्ञान का भंडार है) महिमा और बड़ाई, और मुख्यता भक्ति भाव की, अंतर और बाहर बर्तावे में ब-दस्तूर जारी रहेगी, क्योंकि वही सतगुरु का निज स्वरूप है और सेवक के पहुँचने का निज धाम है, यानी वहीं जाकर उसकी भक्ति पूरण होगी और वहीं उसको पूरण और अमर आनन्द प्राप्त होगा।

दसवाँ भाग

क़िस्म दूसरी

जवाब बाज़ तरकों का, जो कोई २ सतसंगी और दुनिया के लोग निस्बत बर्तावे समाध और तसबीर राधास्वामी महाराज के करते हैं।

९३—कोई २ सतसंगी और मूरत पूजा वाले ऐसा तर्क करते हैं कि राधास्वामी बाग़ में जो समाध और तसवीर पर हार-फूल चढ़ाये जाते हैं और परशाद भेंट भी रक्खा जाता है, यह कर्रवाई मूरत पूजा वालों के मुवाफ़िक़ है। सो यह कथन और समझ उनकी बिल्कुल ग़लत है। यहाँ यह कार्रवाई निशान सिर्फ़ अदब और प्यार का है, क्योंकि जो नये सतसंगी, राधास्वामी मत के, आते हैं, वे बहुत शौक़ के साथ देखना चाहते हैं कि कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल का कैसा स्वरूप था और वे तसवीर का दर्शन करके बहुत ख़ुश होते हैं। और जो राधास्वामी दयाल के चरणों में भाव और प्यार के सबब से, उमंग सेवा की उनके मन में पैदा होती है, तब वे हार और फूल और शीरीनी और नक़द वग़ैरा वहाँ पेश-कश करते हैं यानी सनमुख रखते हैं। हार और फूल उलट कर चढ़ाने वालों को दे दिया जाता है, और शीरीनी साधुओं और सतसंगियों को

वहीं तक़सीम कर दी जाती है, और नक़द रुपया साधुओं और बाग़ के ख़र्च में आता है।

९४—आम तौर पर मन का ख़वास है कि जिस किसी को परमार्थ में या दुनिया में बड़ाई और महिमा सुने, तो उसके दर्शनों की उमंग और चाह उठाता है। और जो वे उस वक़्त मौजूद न होवें तो उनकी तसवीर या निशान के देखने को चाहता है और उसको देख कर बहुत मगन होता है।

९५—अब ख़्याल करो कि कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल के दर्शनों की या उनकी तसवीर या निशान के देखने की, किस क़दर अभिलाषा सतसंगी के दिल में (कि जिसने उनके निज स्वरूप का इष्ट धारण किया है और उनके निज धाम में पहुँचना चाहता है) पैदा होनी चाहिये? और जब वह इस इरादे से शहर आगरे में पहुँच कर राधास्वामी बाग़ में (जहाँ कि महाराज कुछ अरसे तक रहे) जाता है, और उनकी यादगार समाध और तसवीर और पलँग और भजन करने की चौकी और खड़ाऊँ वग़ैरा का दर्शन करता है, उस वक़्त उसका चित्त निहायत मगन होता है और उसके मन में भाव और प्यार ज़्यादा पैदा होता है। और जैसे कि कोई अपने प्यारे से मिलने को जावे, उस वक़्त कोई चीज़ उम्दा या तोहफ़ा उसके लायक ले जाता

है, वैसे ही यह प्रेमी अपनी ताक़त के मुवाफ़िक़, भेंट और शीरीनी और हार-फूल वग़ैरा पेश करता है। और जो उमंग ज़्यादा है तो जिस क़दर बन सके, उस मकान की और भी सुविधाओं की जो वहाँ रात दिन रहते हैं, तन की सेवा करके अपना परमार्थी भाग बढ़ता है।

९६—क्योंकि जब राधास्वामी दयाल सर्व समर्थ और कुल्ल-मालिक हैं, और वक़्त छोड़ने चोले के उन्होंने अपनी ज़बान-ए-मुबारक से फ़रमाया कि हम बराबर निगरानी सतसंगियों की रक्खेंगे, तो जो कोई उनके चरणों में भाव और प्यार लाता है या उनकी महिमा सुन कर उमंग के साथ कोई सेवा करता है, तो वे ज़रूर उस पर थोड़ी-बहुत दया फ़रमावेंगे यानी उसको भक्ति और प्रेम दान देंगे।

९७—इस क़िस्म का बर्तावा मूरत-पूजा में किसी तरह दाख़िल नहीं हो सकता। हर मुल्क में और हर शहर में हर एक अपने २ प्यारे रिश्तेदार या दोस्त की यादगार या निशान या तसवीर को बारम्बार देखना चाहता है, और उसकी समाध या क़बर पर वक़्तन-फ़वक्तन हार-फूल और उम्दा चीज़ें खाने-पीने की पेश करता है यानी चढ़ाता है। फिर जो परमार्थी लोगों ने अपने मत के आचार्य की तसवीर या निशान या समाध के साथ ऐसी कार्रवाई करी तो क्या अचरज है? और वह किस तरह मूरत-पूजा में

दाख़िल हो सकता है ? ख़ास कर जब कि वहीं बाग़ में सतसंग मौजूद है और मूरत-पूजा वग़ैरा का बराबर खंडन होता है, और भी बानी में जा-ब-जा शब्द और सतगुरु वक़्त की भक्ति का हुक्म है ।

९८—लोग अपनी अन-समझता और अ-विचारता से तर्क और तान और ठठोली की बातें करते हैं । और जो वे ज़रा भी गौर करें और दुनिया के और मन के हाल पर नज़र करें तो उनको साफ़ मालूम होवेगा कि वह कार्रवाई जो महाराज राधास्वामी की समाध और तसवीर और निशानों वग़ैरा की निस्बत जारी है, वह ज़हूरा और निशान सिर्फ़ प्रेम और भाव और अदब का है । और असली कार्रवाई परमार्थ की यानी सतसंग और शब्द का अभ्यास, और जो सतगुरु या साध मिल जावें तो उनकी पूजा और सेवा और राधास्वामी दयाल की बानी का समझ २ कर पाठ और उनके बचनों का मनन ब-दस्तूर जारी है, फिर ऐसी जगह मूरत-पूजा का कहाँ दख़ल हो सकता है ?

९९—मालूम होवे कि एक मकान, ख़ास कर राधा-स्वामी मत के आचार्य और प्रगट करने वाले, सहज जोग यानी सुरत-शब्द अभ्यास के नाम से तैयार होना निहायत ज़रूर और मुनासिब मालूम हुआ, ताकि कुल्ल सतसंगी

हर एक देश के (जो कि राधास्वामी मत में शामिल होवें) एक जगह ख़ास पर, यानी सदर मुक़ाम पर जहाँ कि राधास्वामी दयाल प्रगट हुए, किसी वक़्त-मुआयना पर जमा होकर आपस में मिलते रहें, और एक दूसरे की हालत प्रेम और भक्ति और अभ्यास की देख कर परस्पर फ़ायदा उठावें, और राधास्वामी मत के ताल्लुक़ जो किसी को कुछ दरियाफ़्त करना या कहना होवे, वे एक जगह बैठ कर उसका तज़करा करें और अपनी २ आज़मायश और तजर्बे का हाल थोड़ा-बहुत मुनासिब तौर से ज़ाहिर करके एक दूसरे की प्रीति और प्रतीत बढ़ावें और आपस में मुहब्बत और इत्तफ़ाक़ परमार्थी भाईचारे का पैदा होवे, और सब कोई अपने अपने मुवाफ़िक़ इस भारी और सहज और अन-उपमा-जोग मत और अभ्यास के प्रकाश करने, यानी अधिकारी जीवों के समझाने-बुझाने में मदद देवें, और ऐसा मकान सिवाय राधास्वामी बाग़ के, जहाँ राधास्वामी दयाल कुछ अर्से तक आप रहे और वहीं उनकी समाध बतौर यादगार बनाई गई है और उनकी तसवीर और निशानात वग़ैरा मौजूद हैं, दूसरा नहीं हो सकता।

१००—इस वास्ते मुनासिब है कि कुल्ल सतसंगी वक़्त मेले के (जो बिलफ़ैल साल भर में एक मर्तबा होता है) या दो साल में एक मर्तबा या साल भार में चंद बार

जब २ जिसको मौक़ा मिले, आगरे में आकर ज़रूर दर्शन समाध व तसवीर व निशान वग़ैरा का करें, और सतसंग में जो हर रोज़ जारी है, शामिल होकर अपने संशय और भरम दूर करावें और प्रीति और प्रतीत बढ़ावें और अभ्यास में मदद लेवें, क्योंकि बग़ैर सतसंग के अहंकार और मूर्खता और विपरीत दूर नहीं हो सकती और न अंतर अभ्यास में, जैसी कि चाहिये, तरक़्क़ी मुमकिन है और न आपस में हर मुल्क और शहर के सतसंगियों में भाव और प्यार पैदा हो सकता है।

दसवाँ भाग

क़िस्म तीसरी

बाज़े सतसंगियों की अनजानता की बोल-चाल और समझौती का वर्णन और उनको नसीहत।

१०१—ऐसे सतसंगी कि जो संत सतगुरु से मिलें और उनके चरणों में थोड़ी-बहुत पहिचान करके उनका भाव और प्यार आवे, बहुत कम होंगे। और जो उन में से कोई ऐसा कहें या ख़्याल करें कि हम को सतगुरु वक़्त मिल गये और अब कोई ज़रूरत किसी के मानने की नहीं रही, यह कहन उनकी अन-समझता की है, क्योंकि जब वे पहिले सतसंग में आये और उपदेश लिया, उस वक़्त तो उनको

सतगुरु में वैसा भाव (कि जो सतसंग और अभ्यास करके कोई दिन में पैदा हुआ) नहीं था, और उस वक़्त वे कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल के निज स्वरूप में, जो कि अपार और अनंत है, भाव और प्यार लाकर राधास्वामी मत में शामिल हुये।

१०२—फिर रफ़्ता रफ़्ता सतसंग और अभ्यास करके और घट में परचे पाकर उनकी समझ बढ़ी, यानी सतगुरु को राधास्वामी दयाल का निज पुत्र और मंज़ूर-ए-नज़र यानी प्यारा मानने लगे। और किसी २ ने ऐसी समझ धारण की कि सतगुरु राधास्वामी दयाल के देह स्वरूप हैं और राधास्वामी पद उनका निज रूप और निज धाम है। इन दोनों सूरतों में निज स्वरूप राधास्वामी दयाल की महिमा और बड़ाई ब-दस्तूर रही, यानी वह पिता और भंडार स्वरूप हुआ और देह रूप निज धार और पुत्र स्वरूप हुआ। फिर जब कि इन दोनों स्वरूपों की महिमा और बड़ाई सतसंगी के हिरदे में समझ-बूझ के साथ बस गई और जो वह समझदार और विचारवान है तो राधा-स्वामी दयाल के उस देह स्वरूप की, जो उन्होंने प्रथम धारण करके राधास्वामी मत और उसकी नवीन और सहज जुगत को प्रगट किया, वैसी ही महिमा और बड़ाई समझ कर प्रीति भाव उनके चरणों में लावेगा, जैसा कि अपने वक़्त के

सतगुरु के देह स्वरूप में। लेकिन जो कि वह स्वरूप उसके सामने प्रगट नहीं है यानी गुप्त हो गया, इस वास्ते जो उसकी यादगार और बानी-बचन या निशान या तसवीर मौजूद है, तो उसको उसी नज़र, भाव और अदब और प्यार से देखेगा और उसके साथ वैसा ही बर्ताव करेगा, जैसे कि वक़्त के सतगुरु की तसवीर और उनके बैठने और पहिरने और बर्तने की चीज़ों से बर्तता है क्योंकि निज रूप, दोनों देह स्वरूपों का एक ही है और वह अमर और अजर और सदा एक-रस मौजूद है। देह स्बरूप जुदा २ होंगे पर जो शब्द कि उनमें व्यापक है, वह हमेशा एक ही है। फिर जो किसी देह स्वरूप का कोई निरादर करेगा या उसको ओछा समझेगा तो गोया उसने निज रूप का निरादर किया और उसको ओछा समझा। फिर ऐसी समझ से दूसरा देह स्वरूप जिसमें वही निज रूप यानी शब्द मौजूद है, कैसे उससे राज़ी होगा ?

१०३—ऐसी समझ और ऐसा बर्ताव ज़ाहिर करता है कि उस सतसंगी की पहिचान और समझ संत सतगुरु और उनके निज रूप की, जैसा कि चाहिये, बिलकुल नहीं आई। नहीं तो वह एक देह स्वरूप का आदर और दूसरे देह स्वरूप का निरादर न करता यानी दोनों स्वरूप में किसी तरह का भेद और फ़र्क़ न समझता। बल्कि जो कि

संत सतगुरु बनाये हुये उस आदि स्वरूप या भेजे हुए निज रूप के हैं, तो वह आदि देह स्वरूप और निज स्वरूप, दोनों पिता के स्वरूप हुये, और मौजूदा स्वरूप संत सतगुरु का पुत्र रूप हुआ। तो हर सूरत और हालत में पिता रूप की महिमा और आदर ज़्यादा चाहिये, न कि कम। और जो कोई यकताई समझे तो भी दोनों में भाव और प्यार बराबर होना चाहिये और जो कोई कमी करे तो उसकी समझ ओछी और ग़लत है।

१०४—यह बात सही है कि ऐसा बर्तावा जैसा कि ऊपर लिखा गया, वक़्. मौजूदगी दोनों स्वरूपों के हो सक्ता है और जब कि कोई स्वरूप गुप्त हो गया, तब उस के साथ बर्तावा भी बन्द हो गया। लेकिन उस स्वरूप के तसवीर या बानी-बचन या कोई यादगार में वैसा ही बर्तावा प्यार और अदब के साथ किया जावेगा, जैसा कि मौजूदा सतगुरु के तसवीर और बानी-बचन और कार-आमद चीज़ों में किया जाता है।

१०५—निज रूप की महिमा और बड़ाई भारी है और हमेशा एक सी रहेगी, और कुल्ल जीव पहिले उसी में प्रीति और प्रतीत लाकर राधास्वामी मत में शामिल होवेंगे और पीछे आहिस्ता २ थोड़ी-बहुत पहिचान सतगुरु स्वरूप की करते जावेंगे और उसी मुवाफ़िक़ उसमें भाव और प्यार

लाते जावेंगे। और जब तक कि पूरी पहिचान नहीं आवेगी, तब तक पूरी प्रीति और प्रतीत ब-दस्तूर निज स्वरूप की की जावेगी। और जोकि कुल्ल सतसंगियों का निशाना और पहुँचने और विश्राम करने का धाम वही निज स्वरूप यानी राधास्वामी पद है, इस वास्ते उसकी प्रीति और प्रतीत कभी घट नहीं सक्ती। और सतगुरु रूप की प्रीति और प्रतीत में, मुवाफ़िक़ हर एक सतसंगी की समझ-बूझ और पहिचान और परचों के, हमेशा फ़र्क़ रहेगा यानी कुल्ल सतसंगियों की प्रीति-प्रतीत में बहुत से दरजे होंगे। फिर जो कोई अपनी प्रीति-प्रतीत को सिर्फ़ सतगुरु के स्वरूप पर ख़त्म करे, तो यह मुनासिब नहीं है। निज स्वरूप और देह स्वरूप का भेद हमेशा रहेगा और शब्द स्वरूप की महिमा देह स्वरूप से ज़्यादा समझनी चाहिये। और जब कोई पूरी समझ लेकर इन दोनों की एकताई करे तो भी उसकी बोल-चाल ऐसी होनी चाहिये कि जिस में किसी स्वरूप का निरादर या ओछापन न पाया जावे। और मुख्यता हर हाल में शब्द स्वरूप की रहेगी। पर जब तक कि देह स्वरूप मौजूद है, ज़ाहिर में उस की मुख्यता और अन्तर में शब्द स्वरूप, और भी देह स्वरूप, की मुख्यता (जहाँ तक कि देह स्वरूप की पहुँच है) करे, तो दुरुस्त है जैसा कि इस शब्द में राधास्वामी दयाल ने फ़रमाया है :—

शब्द

गुरू मोहिं अपना रूप दिखाओ ॥ टेक ॥

यह तो रूप धरा तुम सरगुन, जीव उबार कराओ ॥ १ ॥
रूप तुम्हारा अगम अपारा, सोई अब दरसाओ ॥ २ ॥
देखूँ रूप मगन होय बैठूं, अभय दान दिलवाओ ॥ ३ ॥
यह भी रूह पियारा मोको, इस ही से उसको समझाओ ॥ ४ ॥
बिन इस रूप काज नहिं होई, क्योंकर वाहि लखाओ ॥ ५ ॥
ताते महिमा भारी इसकी, पर वह भी लखवाओ ॥ ६ ॥
वह तो रूप सदा तुम धारो, याते जीव जगाओ ॥ ७ ॥
यह भी भेद सुना मैं तुमसे, सुरत शब्द मारग नित गाओ ॥ ८ ॥
शब्द रूप जो रूप तुम्हारा, वामें भी अब सुरत पठाओ ॥ ९ ॥
डरता रहूँ मौत और दुख से, निरभय कर अब मोहिं छुड़ाओ ॥१० ॥
दीन दयाल जीव हितकारी, राधास्वामी काज बनाओ ॥ ११ ॥

१०६—जो कि पूरे प्रेमी सतसंगी जिनको वक़्त के संत सतगुरु स्वरूप में पूरा भाव आया है, बहुत कम होंगे। और बाक़ी दरजे-ब-दरजे अपनी २ प्रतीत के मुवाफ़िक़ सतगुरु में भाव और प्यार लावेंगे। और बाज़े नवीन सत-संगी उनको सिर्फ़ उपदेश-करता और साधना करने वाले ख़्याल करके उसी मुवाफ़िक़ उनको बड़ा मानेंगे और पूरा भाव निज स्वरूप यानी राधास्वामी दयाल के चरणों में लावेंगे। इस वास्ते अव्वल दरजे के सतसंगियों को मुना-सिब और लाज़िम हैं कि अपनी बोल-चाल और ज़ाहिरी बर्तावा, निस्बत राधास्वामी दयाल के आदि स्वरूप, और

उसके निशान और यादगार वग़ैरा और वक़्त के सतगुरु के स्वरूप और सामान वग़ैरा में इस तौर पर दुरुस्त रक्खें जैसा कि ऊपर बयान हुआ है। और एक-अंगीपन की बातें हर एक के रू-ब-रू न करें और ऐसा एक-अंगीपन इख़्तियार न करें जिसमें किसी स्वरूप का निरादर या ओछापन पाया जावे।

१०७—अपने वक़्त के सतगुरु स्वरूप में उनको इख़्तियार है चाहे जिस क़दर भाव और प्यार लावें और उमंग के वक़्त चाहे जैसी सेवा करें। मगर इस क़दर होशियारी रक्खें कि किसी हालत और किसी सूरत में आदि देह स्वरूप या निज स्वरूप राधास्वामी दयाल के आदर भाव और महिमा में फ़र्क़ न आवे, और न किसी तरह पर उनका निरादर ज़ाहिरी बर्ताव में पाया जावे। इसमें उन सतसंगियों को निज स्वरूप और आदि देह स्वरूप और मौजूदा सतगुरु स्वरूप की दया और मेहर बराबर प्राप्त होगी। नहीं तो, बे-परवाही और बे-अदबी की बोल-चाल और बर्तावे में वे किसी न किसी स्वरूप की दया से महरूम रहेंगे और उनकी भक्ति में थोड़ा-बहुत ख़लल पड़ेगा और समझ-बूझ भी उनकी किसी क़दर ओछी और ना-दुरुस्त रहेगी।

१०८—ख़ुलासा यह है कि सच्चे प्रेमी सतसंगी और

कुल्ल सतसंगियों को, चाहे वे जिस दरजे के होवें, आपस में मेल-मिलाप रखना चाहिये। और सब को एक ही इष्ट कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल के निज स्वरूप का धारण करना मुनासिब है। और सब को वक़्त के संत सतगुरू में अपनी २ समझ और प्रतीत के मुवाफ़िक़ भाव और प्यार और अदब के साथ बर्तावा करना चाहिये। और जो गृहस्थ या विरक्त सतसंगी उपदेशक होवें (ब-शरते कि वे ख़ुद मतलबी और मानी और अहंकारी न हो जावें) उन में भी मुवाफ़िक़ हर एक के दरजे के, प्रीति-भाव के साथ बर्तावा चाहिये, क्योंकि जो सब का इष्ट एक ही, यानी राधास्वामी दयाल हैं और सब का निज घर भी एक ही यानी राधास्वामी धाम है और सब का असली उपदेशक वही बानी और बचन राधास्वामी दयाल के हैं, तो सब का आपस में इत्तफ़ाक़ और दिली मुहब्बत और प्यार होना चाहिये।

१०६—ज़ाहिरी उपदेश चाहे जिससे हासिल किया होवे, पर हिदायत और तालीम और जुगत और अभ्यास तो सब का एक ही होगा। इस वास्ते कुल उपदेशक और उपदेशियों को राधास्वामी दयाल के दरबार में प्यार-भाव के साथ मिलना चाहिये, और इसी तरह से जहाँ-कहीं जिस किसी का इत्तफ़ाक़ से मेला हो, तो हर एक सतसंगी को मुनासिब है कि एक दूसरे के साथ मुहब्बत से पेश

आवे और परमार्थी भाईचारे के मुवाफ़िक़ बर्ताव करे और ईर्षा और विरोध और ख़ुद-मतलबी को अपने मन में दख़ल न देवे, क्योंकि यह दस्तूर और आदत संसारी जीवों की है। और सच्चे परमार्थियों का स्वभाव उन से जुदा होना चाहिये यानी आम तौर पर उनके मन में सफ़ाई और प्यार और दया सतसंगी भाइयों पर, ख़ास कर, और कुल्ल जीवों की तरफ़, आम तौर से, बग़ैर लिहाज़ क़ौम और मज़हब और देश और रंग-रूप के, जारी होनी चाहिये।

ग्यारहवाँ भाग

वर्णन कैफ़ियत कुल्ल-मालिक के औतार स्वरूप की, और उस की ज़रूरत

११०—बाज़े अपनी अनजानता और ओछी समझ के मुवाफ़िक़ ख़याल करते हैं कि औतार स्वरूप कुल्ल मालिक नहीं हो सकता, या यह कि कुल्ल-मालिक देह स्वरूप में नहीं समा सकता। यह समझ उनकी दुरुस्त नहीं है जैसा कि इस दृष्टान्त से ज़ाहिर होता है।

दृष्टांत—जिस वक़्त कि समुद्र में ज्वार-भाटा आता है यानी उसकी लहर उठ कर समुद्र से सौ-सौ कोस तक, ब-राह-ए-दरिया बढ़ती चली जाती है और कुछ अर्से ठहर कर फिर समुद्र में लौट आती है, तो जिस क़दर देर तक वह लहर सौ कोस में फैली रही, वह समुद्र की लहर

कहलाती है, यानी ख़ुद समुद्र वहाँ मौजूद है और अपने समुद्र रूप से (जो कि बहुत बड़े हिस्से ज़मीन को घेरे हुये है) जुदा नहीं, और सिमट कर फिर वही समुद्र रूप हो जाती है। इसी तरह औतार स्वरूप कुल्ल मालिक की लहर है कि जो उस अपार सिंध स्वरूप चैतन्य से निकल कर और ब्रह्मांड में होकर पिंड में आकर ठहरी, और जिस क़दर अर्से तक उस का पिंड में ठहराव रहा, वह लहर अपने सिंध स्वरूप से जुदा नहीं हुई, और रात-दिन में चंद बार (अभ्यास के वक़्त) सिमट कर सिंध स्वरूप में उलट कर समा जाती है और फिर उत्थान करके, और ब्रह्मांड में रवाँ होकर, पिंड में ठहर जाती है। इस हालत में यह लहर रूप कभी पिंड के मुवाफ़िक़ महदूद नहीं होता और हमेशा सिंध के साथ उसका मेल, और सिंध के मुवाफ़िक़ अपार और अनंत रहता है।

१११—इस दृष्टांत से साफ़ ज़ाहिर है कि लोगों की समझ, निस्बत महदूद होने कुल्ल-मालिक सिंध स्वरूप के, ब-सबब फैलने यानी उतर आने उस की लहर के, पिंड में, सही और दुरुस्त नहीं है। यह कलाम आम जीवों की निस्बत सही हो सकता है कि उनकी धार जो सिंध से रँवा होकर पिंड में आकर ठहरी, वह अपने आप से उलट नहीं सकती, यानी सिंध स्वरूप से मिल कर सिंध रूप नहीं होती।

लेकिन औतार स्वरूप की निस्बत ऐसा ख़्याल करना ग़लत है, क्योंकि उनके सब पट कुले होते हैं और छिन भर में, वह लहर या धारा, सिंध स्वरूप और कभी पिंड में धार रूप होती रहती है और कभी सिंध से जुदा नहीं होता, यानी उसके और सिंध के बीच में कोई पट या परदा हायल नहीं होता है।

११२—ऐसा औतार स्वरूप जब कभी प्रगट हुआ, वह गोया कुल्ल-मालिक ने आप नर-रूप धारण किया। फिर उस स्वरूप की और कुल्ल-मालिक की महिमा बराबर है। लेकिन इस औतार स्वरूप की पहिचान कठिन है। जीवों की क्या ताक़त है कि वे अपनी महदूद और ओछी समझ से इस औतार स्वरूप की गत-मत जान सकें। यह पहिचान थोड़ी-बहुत उसको आवेगी कि जो उनका, कोई काल, प्रीति-भाव के साथ संग करेगा और उनकी जुगती का उन से उपदेश लेकर, उसकी थोड़ी-बहुत अंतर में कमाई करके, उनकी क़ुदरत और दया की अपने घट में परख करेगा, या उसको थोड़ी-बहुत पहिचान आवेगी कि जिसको वे अपनी दया से आप बख़्शिश फ़रमावें। आम तौर पर, वे देह में बैठ कर जीवों के मुबाफ़िक़ बर्ताओ करते हैं और अपनी क़ुदरत और ताक़त का मुतलक़ दिखाबा नहीं करते और न किसी को जताते हैं कि वे कौन हैं। फिर जीवों की क्या ताक़त कि उनकी गति को जान सकें ?

११३—जो कोई कहे कि मालिक को औतार लेने की क्या ज़रूरत है, और जो उस ने औतार लिया यानी पिंड में आन समाया, तो क्या निज स्थान ख़ाली हो गया ?

जवाब इसका यह है कि ज्वार-भाटे के वक़्त, जब समुद्र लहर रूप होकर सौ सौ कोस तक अपने किनारे से दूर चला गया, तो क्या उसका समुद्र रूप ख़ाली हो गया या कहीं जाता रहा ? नहीं, वह दोनों जगह एक ही वक़्त में बराबर मौजूद है। उसका निज रूप न घटा, न बढ़ा। इसी तरह औतार स्वरूप का हाल समझना चाहिये कि उस का, दोनों हालतों में, सिंध स्वरूप एकसाँ क़ायम रहता है।

११४—और औतार स्वरूप की ज़रूरत की वजह यह है कि कुल्ल-मालिक का निज भेद कोई नहीं जान सक्ता, जब तक कि वह आप न जनावे। और जो भक्ति रीत कि उस मालिक ने संत रूप धर कर आप जारी फ़रमाई, उससे भी सब जीव बे-ख़बर हैं। वह रीति भी वह आपही जारी फ़रमाता है और जो कि निज रूप से यह कार्रवाई दुरुस्त नहीं हो सक्ती, यानी उसकी अंतरी हिदायत और उपदेश को कोई नहीं सुन सकता है या समझ सक्ता है, और न जीव को यह ख़बर पड़ सकती है कि अंतर में कौन बोलता है और न किसी बचन की (बग़ैर पहिले उपदेश और हिदायत ज़ाहिरी स्वरूप से पाने के) समझ आ सक्ती

है, क्योंकि जितने मत दुनिया में जारी हैं, उनके आचार्य टटोलवाँ चले, यानी वे निज भेद से उस स्थान और उसके धनी के जहाँ तक कि उनकी पहुँच हुई, वाक़िफ़ न थे। दुनिया में पैदा होकर और भेदी यानी गुरू से मिल कर उनको ख़बर पड़ी, और फिर अभ्यास करके और मन-माया के बहुत से झकोले खाकर, उनको उस पद की प्राप्ति हुई। तब उन्होंने उसी पद की भक्ति और पूजा या उसके ज्ञान यानी समझ-बूझ का अपने साथियों को, जिन्होंने उनका बचन माना, उपदेश किया। और कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल का देश और भेद किसी ने न जाना, क्योंकि सर्व मतों के आचार्य किसी न किसी स्थान पर माया की हद्द में रहे और सत्त पुरुष राधास्वामी दयाल का भेद और देश का हाल और वहाँ पहुँचने का तरीक़ा कुल्ल-मालिक राधा-स्वामी दयाल ने आप इस दुनिया में औतार स्वरूप धर कर प्रगट किया। और जिन जीवों ने उनका बचन माना, उनको अपने चरणों की भक्ति की रीति समझाई और उसकी कार्रवाई आप कारवाई और अपने चरणों के प्रेम की दात आप बख़्शिश करी।

११५—जीवों की सुरत यानी रूह इस क़दर पिंड में नीचे उतर गई है कि वे कुल्ल-मालिक के निज रूप का बचन नहीं सुन सकते और न समझ सकते हैं। और जो

फ़र्ज़ किया कि किसी तरह से कोई बचन उतर कर सुनाया भी जावे, तो उसमें अनेक तरह के संशय और भरम पैदा करके, उसकी प्रतीत नहीं करते और न उसके मुवाफ़िक़ कार्रवाई करने को तैयार हो सकते हैं। इस वास्ते, जब कि कुल्ल-मालिक ने देखा कि सब जीव माया के घेर में कहीं न कहीं अटक रहे और निज घर का भेद न पाकर उससे बिल्कुल बे-ख़बर रहे, और वहाँ कोई न जा सका और न रास्ता वहाँ पहुँचने का किसी को मालूम पड़ा, तब कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल ने अति दया करके आप संत रूप धारण किया और अपना निज भेद और निज घर में पहुँचने का तरीक़ा आप प्रगट किया। अब जीवों को चाहिये कि राधास्वामी दयाल के बानी और बचन को अच्छी तरह समझ कर मानें और उसके मुवाफ़िक़ अभ्यास शुरु करें और चरणों में नित्त सतसंग और अभ्यास करके प्रीति और प्रतीत बढ़ाते रहें तो राधास्वामी दयाल की दया से एक दिन उनका कारज दुरुस्त बन जावेगा यानी माया के घेर से निकल कर निज घर यानी दयाल देश में बासा पावेंगे और अमर आनंद को प्राप्त होवेंगे। और जो वे ऐसा न करेंगे तो माया के देश में बारम्बार किसी न किसी क़िस्म की देह धर कर दुख-सुख भोगते रहेंगे और कभी सच्चा उद्धार उनका नहीं होगा, यानी दयाल देश में नहीं

जाने पावेंगे और न पूर्ण और अमर आनंद को प्राप्त होंगे।

११६—जिन जीवों को कि संत सतगुरु, अपनी दया से सत्त पुरुष राधास्वामी देश में पहुँचावें, वे जीव फिर उलट कर इस देश में नहीं आ सकते, क्योंकि वहाँ का आनंद और विलास ऐसा गहरा और भारी है कि वह उन से छोड़ा नहीं जा सकता और फिर माया देश की तरफ़ उनकी तवज्जह नहीं होती।

११७—जो कोई पूछे कि ब्रह्म पद का भी औतार स्वरूप प्रगट होता है या नहीं, तो जवाब उसका यह है कि हाँ होता है, क्योंकि जो ऐसा न होता तो ब्रह्म पद का भी भेद पूरा २ किसी को मालूम न होता। जब २ ब्रह्म ने औतार जोगी और जोगेश्वर रूप धारण किया, तब २ उस पद का भेद और उस रचना का हाल जो उसके नीचे है, प्रगट किया, और गुरुवाई की चाल चलाई। और मालूम होवे कि पूर्ण औतार ब्रह्म का कभी २ होता है पर कलायें उस मुक़ाम से अक्सर प्रगट होती रहती हैं और रचना की सम्हाल करती रहती हैं।

११८—और मालूम होवे कि रचना में संत अक्सर प्रगट होते रहते हैं, पर गुप्त रहते हैं और जब तक कि राधास्वामी दयाल की मौज न होवे सतसंग खड़ा नहीं करते और न आम तौर पर उपदेश संत मत का करते हैं।

११६—संत सतगुरु को इख़्तियार है कि जिस को वे पसंद करें, सतसंग और भक्ति करा कर संत बना देवें। जिस पर ऐसी कृपा होवे, वही बड़-भागी है।

बचन ६

वर्णन इस बात का कि जब तक गुरु-मुखता नहीं आवेगी यानी राधास्वामी दयाल के चरणों में गहरी और मुख्य प्रीत नही होगी, तब तक पूरा काम नहीं बनेगा।

१—कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल बे-परवाह हैं, यानी किसी से कुछ नहीं चाहते। पर जो कोई कि उनके चरणों में प्रीति करेगा, उस का भारी फ़ायदा होगा यानी देह के दुख-सुख और जनम-मरन के कष्ट-क्लेश से छुटकारा हो जावेगा।

२—ज़ाहिर है कि दुनिया में कुल्ल जीव किसी न किसी में प्रीति धर कर कार्रवाई कर रहे हैं यानी जिस को जिस किसी चीज़ या काम का शौक़ है, उसी को वह तवज्जह और मेहनत के साथ करता है और जिस किसी में उस का प्यार है, वहीं तन-मन-धन ख़र्च करता है और उसी के संग में उस को सुख और आराम मिलता है।

३—इसी तरह जो कोई राधास्वामी दयाल के चरणों

में, पता और भेद धुर धाम और उसके रास्ते का, और जुगत चलने की, भेदी अभ्यासी से दरियाफ़्त कर के, प्यार लावे और मिलने के निमित्त शौक़ के साथ जतन शुरू करे, तो उसको भी अंतर में किसी क़दर सुख और रस मिलेगा और जिस क़दर चाल बढ़ती जावेगी, उसी क़दर वह सुख और आनंद भी बढ़ता जावेगा, और अपने प्रीतम राधास्वामी दयाल की दया की भी परख होती जावेगी।

४—राधास्वामी दयाल के चरणों में प्रीति, साथ प्रतीत के, करना चाहिये यानी ऐसा निश्चय धारण करे कि वे कुल्ल-मालिक और सर्व समर्थ और प्रेम और आनंद का भंडार हैं। और यह निश्चय सतगुरु के सतसंग और उन की जुगत की थोड़ी-बहुत अंतरी कमाई करने से आवेगा।

५—यह प्रीति राधास्वामी दयाल की महिमा सुन कर और देह और दुनिया की नाशमानता का हाल देख कर आवेगी। यानी सतसंग के बचन सुन कर यह मालूम पड़ेगा कि सिवाय राधास्वामी दयाल के, और कोई जीव का सच्चा संगी और हितकारी नहीं है कि जो दुख-सुख में इस की सहायता करे। और यह संसार और उसके भोग और सुख ठहराऊ नहीं है और न जीव की देह ठहराऊ है। एक दिन ज़रूर सब को छोड़ना पड़ेगा और उस वक़्त का संगी और सहायक हर एक को ज़रूर दरकार है। और ऐसे संगी और

सहायक, कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल और उनके चरणों की धार है, और वह घट २ में मौजूद है।

६—जो कि कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल कुल्ल रचना के कर्ता और प्रेरक और फिर सब से न्यारे हैं, इस वास्ते जो कोई उनके चरणों में सच्ची प्रीति करे, वह भी एक दिन सब से न्यारा होकर उनकी मेहर और दया से उनके धाम में पहुँचेगा और उन के दर्शनों के परम बिलास और आनंद को प्राप्त होगा।

७—पर शर्त यह है कि वह, जैसे कि राधास्वामी दयाल को सब का करता और सब से बड़ा माना है, उसी मुवाफ़िक़, उन से सब से ज़्यादा प्रीति और भाव करे। यह हालत जल्दी नहीं आ सक्ती है। लेकिन जो कोई उनके चरणों में प्रीति शुरू करेगा और आहिस्ता २ सतसंग और अंतरमुख अभ्यास करके उसको बढ़ाता जावेगा, तो रफ़्ता २ एक दिन उसकी प्रीति की मुख्यता उनके चरणों में ज़रूर हो जावेगी और तब ही उसका काम पूरा समझना चाहिये।

८—ऐसी गहरी प्रीति जब आवेगी, तब दिन २ अभ्यास करके राधास्वामी धाम की तरफ़ इसकी नज़दीकी होती जावेगी और उनकी दया और मेहर और क़ुदरत नज़र में आती जावेगी। और जिस क़दर कि प्रीति और

प्रतीत बढ़ती जावेगी, उसी क़दर इसकी चाल भी तेज़ होती जावेगी और रस और आनन्द भी बढ़ता जावेगा। ऐसे प्रेमी अभ्यासी का नाम गुरुमुख है और वही निज धाम में पहुँच कर बासा पावेगा यानी अपने सच्चे माता-पिता राधास्वामी दयाल का दर्शन पाकर परम आनन्द को प्राप्त होगा।

९—देखो दुनिया में स्त्री और पुरुष की कैसी गाढ़ी प्रीत होती है कि अपने पति के ख़ातिर स्त्री कुल कुटुम्ब-परिवार को छोड़ कर चली आती है, और उसके सुख में सुख और उसकी सेवा और उसके संग में अपना आनंद और आराम मानती है। हरचंद कि अपने और पति के कुटुम्ब-परिवार में दरजे-ब-दरजे प्रीति उसकी रहती है, पर पति के साथ मुख्यता यानी सब से ज़्यादा भाव और प्यार रहता है, और ज़रूरत के वक़्त अपने पुत्र का भी संग छोड़ कर पति के संग रहना खुशी से मंज़ूर और क़ुबूल करती है। और विचार करो कि वह कभी पति का सुमिरन और ध्यान नहीं करती, लेकिन गहरी प्रीति के सबब से पति का स्वरूप उसके हिरदे में बसा रहता है और हर वक़्त उसके वास्ते मुहब्बत और सेवा का जोश, उमंग के साथ, उठता रहता है।

१०—परमार्थ में जिस किसी को गहरी प्रीति राधास्वामी दयाल के चरणों में आगई, वही बड़भागी है। यानी

कुटुम्ब-परिवार और दुनिया के भोग और सामान से ज़्यादा भाव और प्यार, जिस किसी का, राधास्वामी दयाल के चरणों में आया और वह दिन २ बढ़ता जाता है, उसी का नाम गुरुमुख है और वही परम पद पावेगा।

११—ऐसी प्रीति का चरणों में पैदा होना ना-मुमकिन या निहायत मुशकिल नहीं मालूम होता, क्योंकि देखने में आता है कि दुनिया में लोग सिर्फ़ स्त्री और पुत्र से नहीं, बल्कि और लोगों से भी, जो कि रिश्तेदार और बिरादरी और हम-क़ौम भी नहीं हैं, ऐसी गहरी प्रीति करते हैं कि जिसको एक-जान-दो-क़ाबिल कहना चाहिये यानी कुल्ल अपने प्यारों और रिश्तेदारों और धन और सामान वग़ैरा से ज़्यादा प्रीति अपने दोस्त के साथ करते हैं और उसको ज़िन्दगी भर वैसा ही निभाते हैं।

१२—इसी तरह बाज़े जीव एक २ इन्द्रिय के भोग में या किसी और शौक़ में बँध कर, अपने कुटुम्ब-परिवार और धन और माल, बल्कि अपनी देह और जान तक की प्रीति का ख़्याल छोड़ कर, उसी एक भोग और शौक़ का रूप हो जाते हैं और अपनी इज़्ज़त-हुरमत का भी ज़रा ख़्याल नहीं करते, जैसे शराबी और जुआरी और सैलानी और तमाशबीन वग़ैरा।

१३—खुलासा यह है कि जिसके मन में जिस बात

का गहरा शौक़ पैदा हो जाता है, फिर वह उस शौक के पूरा करने के वास्ते पूरी कार्रवाई करता है, और कुटुम्ब-परिवार और ज़ात-पाँत और इज़्ज़त और हुरमत और अपने तन, मन और धन का कुछ भी ख़्याल और सोच-विचार नहीं करता, और न जगत की बदनामी से डरता है और न किसी की शर्म और लाज उसको उसके काम से रोक सकती है।

१४—फिर जो किसी ने परमार्थ में, वास्ते अपने जीव के सच्चे कल्यान और उद्धार के, कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल और गुरू और प्रेमी और भक्त-जन में विशेष प्रीति करी और मामूली चाल से ज़्यादा क़दम बढ़ा कर रक्खा यानी सच्चे परमार्थ में ज़्यादा प्रीति करी और तन-मन-धन ज़्यादा लगाया, तो कुछ मुश्किल और अचरज की बात नहीं है। दुनिया के लोगों को, उसकी हँसी करना या उसकी चाल पर तान मारना नहीं चाहिये, बल्कि जो कार्रवाई वह करे उसको बजा और मुनासिब समझ कर उसकी तारीफ़ करना चाहिये, और जो बने तो आप भी उसी के मुवाफ़िक थोड़ी-बहुत परमार्थी कार्रवाई यानी सतसंग और सेवा और भजन करके अपना जन्म सुफल करें। बर-ख़िलाफ़ इसके, दुनिया के लोगों का यह हाल है कि परमार्थियों की निंदा, बग़ैर समझे-बूझे, जल्द

करते हैं और उन के धमकाने को तैयार होते हैं और जो कोई संसार में चाल-कुचाल चले उसकी ख़बर भी नहीं लेते।

१५—जो कोई कहे कि बग़ैर देखे या कुछ रस पाये गहरी प्रीति नहीं हो सक्ती, तो यह बात दुरुस्त है। सच्चे परमार्थी को मुनासिब है कि पहले सतसंग करके कुल्ल-मालिक़ राधास्वामी दयाल के चरणों में प्रीति लावे और जो उपदेश ध्यान और भजन का, उन्होंने सहज जुगत से जारी फ़रमाया है, उस के मुवाफ़िक कोई दिन अभ्यास करे, तो उस को वे अपनी दया से थोड़ा-बहुत अंतर में ज़रूर रस देंगे। फिर प्रीति भी आहिस्ता २ पैदा होती जावेगी और जैसा कि रस और आनंद अंतर में बढ़ता जावेगा और परचे मिलते जावेंगे, उसी क़दर प्रीति और प्रतीत भी बढ़ती जावेगी।

१६—ज़ाहिर में प्रेमी सतसंगी (जो राधास्वामी दयाल के उपदेश के मुवाफ़िक प्रीति सहित साधना कर रहे हैं), चाहे वे विरक्त हैं या गृहस्थ, राधास्वामी दयाल की देह हैं। सो जिस किसी को जब उमंग सेवा की उठे, तब उसको चाहिये कि इन की सेवा करे। उस सेवा का फल राधास्वामी दयाल बख़्शेंगे, यानी प्रेम और भक्ति सेवक के हृदय में बढ़ावेंगे।

१७—जो किसी को भाग से संत सतगुरु मिल जावें,

तो उनको राधास्वामी का देह स्वरूप समझना चाहिये। और जो सेवा कि प्रेमी सतसंगी उमंग के साथ उनके चरणों में करेगा, वह ख़ुद राधास्वामी दयाल की सेवा समझी जावेगी। और उसका फल राधास्वामी दयाल संत सतगुरु स्वरुप से देवेंगे यानी अंतर में ज़्यादा प्रेम और अभ्यास में विशेष रस बख़्शेंगे।

१८—जिस क़दर कि प्रेमी सेवक की प्रीति संत सतगुरु के चरणों में पैदा होती और बढ़ती जावेगी, उसी क़दर उनके निज स्वरूप यानी कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल के चरणों में प्रीति और प्रतीत बढ़ती और पकती जावेगी और सुरत और मन, संत सतगुरू स्वरूप को अभ्यास के समय अगुवा करके, सहज में सिमटेंगे और घट में आहिस्ता २ ऊँचे की तरफ़ को चढ़ेंगे।

१९—संत अथवा राधास्वामी मत में बाहरी पूजा प्रीति भाव के साथ संत सतगुरु के चरणों में की जाती है, क्योंकि उनका स्वरूप जो कि अभ्यासी के अंतर में ध्यान करके प्रगट होगा, वह चैतन्य और अकाल रूप है। और जहाँ तक कि रूप-रंग-रेखा है, वहाँ तक वह स्वरूप दरजे-ब-दरजे सूक्षम और नूरानी होता हुआ अभ्यासी के संग जावेगा और सच्चे अरूप पद में, जोकि रूप-रंग-रेखा से न्यारा है, पहुँचा देगा।

२०—और अंतर में सेवा संत सतगुरू के निज रूप की है, जो कि शब्द और प्रकाश स्वरूप है। और वह सेवा यह है कि चित्त देकर आवाज़ को घट में सुनना और उसके आसरे सुरत को चढ़ाना। सो जब तक कि संत सतगुरू के ज़ाहिरी स्वरूप में गहरा प्यार नहीं आवेगा, तब तक शब्द स्वरूप भी, जैसा कि चाहिये, प्रगट नहीं होगा, और न उसमें गहरी प्रीति आवेगी यानी अंतर में चढ़ाई संत सतगुरु के ज़ाहिरी स्वरुप की मदद से होवेगी, जो उसमें गहरा प्रेम रहा है।

२१—खुलासा यह है कि जब तक संत सतगुरु नहीं मिलेंगे, तब तक पूरी और गहरी प्रीति और प्रतीत राधास्वामी दयाल के चरणों में नहीं हो सक्ती है, और न सुरत की चढ़ाई माया के घेरे के पार मुमकिन है। लेकिन सच्चे परमार्थियों को मुनासिब और लाज़िम है कि जिस क़दर बन सकें, राधास्वामी दयाल के चरणों में प्रीति और प्रतीत लाकर, अपना अभ्यास ध्यान और भजन का, प्रेमी सतसंगी की मदद से जारी रक्खें और जो उनके सच्चा दर्द है, तो संत सतगुरु भी ज़रूर सवेर-अवेर मिल जावेंगे और फिर उनकी दया और मेहर से प्रीति और प्रतीत ज़ाहिरी और अंतरी, दोनों रूपों में बढ़ती जावेगी और आहिस्ता २ एक दिन कारज पूरा बन जावेगा।

बचन ७

राधास्वामी दयाल के चरणों में गुरुमुख-अंग का बर्ताव और उस की विधी का वर्णन।

१—जब कि होशियारी और समझ-बूझ के साथ सतसंग करके ऐसा निश्चय हो गया कि कोई कुल्ल और सच्चा मालिक रचना का ज़रूर है और वह सत्तपुरूष राधास्वामी दयाल हैं, और सब जीव उन को अंश हैं, जैसे सूरज और सूरज की किरण और उन्हीं के चरणों की धार से सब रचना प्रगट हुई और उसी के आसरे ठहरी हुई है।

२—और यह भी सतसंग करके तहक़ीक़ हो गया कि रचना में तीन बड़े दर्जे हैं :—

एक, राधास्वामी दयाल देश जहाँ माया नहीं है, लेकिन सत्त क़ुदरत है यानी राधास्वामी धाम के (जहाँ किसी तरह का ग़िलाफ़ नहीं है) नीचे के चैतन्य पर सत्त-लोक तक सत्त क़ुदरत का ग़िलाफ़ है अथवा सत्त चैतन्य का सत्त चैतन्य रूपी ग़िलाफ़ है और इसी सबब से वहाँ की रचना अमर और अजर और महा आनंद स्वरूप है और काल और कष्ट और क्लेश का वहाँ नाम और निशान भी नहीं है।

दूसरा दर्जा, जहाँ माया प्रगट हुई और शुद्ध है और उसी का ग़िलाफ़ इस दर्जे के निर्मल चैतन्य पर

चढ़ा हुआ है और इसी सबब से वहाँ की रचना में सुख विशेष और दुख बहुत कम, और जनम-मरन बहुत देर से होता है, और रचना भी सूक्षम है और सतोगुनी बर्तावा बहुत, और रजोगुनी कम, और तमोगुनी बहुत कम है, लेकिन राधास्वामी दयाल देश के जाने वाले को इस दर्जे में ठहरना और वहाँ के सुख और आनंद में लिपटना मुनासिब नहीं है, नहीं तो उसका अपने निज घर यानी राधास्वामी धाम में जाने का रास्ता बंद हो जावेगा।

तीसरा दर्जा, जहाँ कि चैतन्य पर मलीन माया का ग़िलाफ़ चढ़ा हुआ है और इस सबब से इस दर्जे की रचना में कष्ट और क्लेश ज़्यादा, और सुख और आनंद कम, और जनम-मरन भी जल्द २ होता है। राधास्वामी देश के जाने वाले को इस दर्जे की रचना में भी अपना बंधन और मोह नहीं करना चाहिये। सिर्फ़ गुज़ारे के मुवाफ़िक मुनासिब तौर से बर्ताव जारी रखना चाहिये कि जिस्से उस की चाल में विघ्न न पड़े और आहिस्ता २ सब बंधन अंतरी और बाहरी ढीले होते जावें और किसी तरह का उन में अटकाव पैदा न होवे या, इस क़िस्म का दुख-सुख कि जो इसकी चाल और निज घर के पहूँचने के इरादे में ख़लल डाले, न व्यापे।

३—और सतसंग करके यह भी समझ में आ गया

कि कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल या उन के चरणों की धार, कुल्ल रचना की करता और प्रेरक और सम्हाल करनेवाली है और सब रचना उन के चरणों के आधीन है तो उनकी ओट और शरन लेना कोई नई और अचरज की बात नहीं है, क्योंकि प्रेरक और सम्हाल करने वाले असल में वे ही हैं।

४—जब कि ऊपर की तीन बातें सही हो गईं और उन का थोड़ा-बहुत निश्चय हृदय में आगया, तब सच्चे और प्रेमी परमार्थी को, जो (संसार और उस के भोग और सामान और अपनी देही को नाशमान देख कर) अपना सच्चा और पूरा उद्धार चाहता है यानी देहियों के दुख-सुख और जनम-मरन से सच्चा बचाव चहाता है, मुनासिब है कि राधास्वामी दयाल के चरणों में प्रेम और प्रीति करे और उनके धाम में पहुँचने का सच्चा और पक्का इरादा दिल में बाँधे, क्योंकि बिना प्रेम और शौक़ के, कोई किसी से मिल नहीं सक्ता और न उसकी तरफ़ चल सक्ता है। और जो धुर धाम में पहुंचने का इरादा पक्का और सच्चा न हुआ तो रास्ते में थक जाने या अटक जाने का ख़ौफ़ रहेगा और इस वास्ते काम पूरा नहीं बनेगा ।

५----भक्ति यानी प्रेम प्रीति का बर्ताव राधास्वामी दयाल के चरणों में तीन प्रकार से हो सक्ता है--पहिला, सेवक-स्वामी

भाव, दूसरा पुत्र-पिता भाव, और तीसरा, स्त्री-पति यानी प्रीतम भाव।

६—पहिले भाव में सेवक के दिल में ख़ौफ़ और अदब स्वामी के तेज और बड़ाई का ज़्यादा रहता है। और दूसरे भाव में स्वामी की दया का भरोसा भक्त के मन में विशेष रहता है। और तीसरे भाव में प्रेमी के मन में स्वामी के चरणों में प्रेम की मुख्यता रहती है। ये तीनों अंग, तीनों भाव में बर्तते हैं, पर एक-एक में एक ख़ास अंग की, जैसा कि ऊपर बयान हुआ, मुख्यता रहती है।

७—प्रेमी-प्रीतम भाव कोई अरसे के सतसंग और सेवा और अंतर अभ्यास के पीछे आवेगा। यानी जिस क़दर कि प्रेमी को अंतर और बाहर रस और आनंद मिलता जावेगा और दया के परचे नज़र आते जावेंगे, उसी क़दर उसकी प्रीति और प्रतीत चरणों में ज़्यादा से ज़्यादा होती जावेगी और उस हालत में प्रेमी को सर्व करतूत अपने प्रीतम की, चाहे आम तौर पर मन के मुवाफ़िक़ है या नहीं, प्यारी लगेंगी और अभाव किसी वक्त में नहीं आवेगा, यानी उसकी हालत प्रेम की, आराम और तकलीफ़ में, यकसाँ रहेगी और प्रेम दिन २ बढ़ता रहेगा, जैसा कि इन कड़ियों में कहा है :—

अगर मेहर से शहद देवें तुझे। मुनासिब समझ ज़हर देवें तुझे॥
तू ख़ुश होके ले और सिर पर चढ़ा। तू चुप होके पी और कह यह सदा॥
कि धन २ हैं धन २ हैं सतगुरू मेरे। उतारेंगे भौजल से बेशक परे॥

८—पहिले और दूसरे भाव में सेवक के मन में थोड़ा-बहुत झुकाव संसार और उसके भोग और सामान और कुटुम्ब-परिवार की तरफ़ रहता है, और आराम और तकलीफ़ में थोड़ी-बहुत हालत बदल जाती है। लेकिन बिल्कुल बे-प्रतीत और प्रीति नहीं होती और थोड़ी देर में सोच और विचार करके अथवा बानी का पाठ करके या कुछ अंतर अभ्यास करके फिर अपने घाट पर आ जाता है। और प्रीति और प्रतीत के बढ़ाने की कोशिश, उनकी, बदस्तूर जारी रहती है और अपनी कसरों को निहारता और अपनी हालत पर झुरता और पछताता और दया के वास्ते प्रार्थना करता रहता है।

९—खुलासा यह है कि जिस किसी के दिल में परमार्थ की मुख्यता आ गई और उसने कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल को सब से बड़ा और सब से ज़्यादा प्रीति करने के लायक़ अच्छी तरह सोच और विचार करके समझ लिया, और सब प्रीतों को उनकी प्रीति के नीचे रक्खा और संसार के भोग और पदार्थों को विघ्नकारक और रास्ते में अटकाने वाला जान कर, उनमें ज़रूरत के मुवाफ़िक़ अपना बर्ताव रक्खा है, तो उसी का नाम गुरुमुख है, और वही एक दिन गुरुमुखताई का पूरा दर्जा हासिल करके निःचिन्त हो जावेगा। यानी जब से कि गुरुमुख अंग

आया, उसी वक़्त से कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल सब तरह से उसकी रक्षा और सम्हाल और तरक़्क़ी, अपनी मेहर और दया से, आप फ़रमावेंगे और एक दिन उसको धुर पद में पहुँचा कर निहाल कर देंगे।

१०—मालूम होवे कि कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल का धाम सबसे ऊँचा और न्यारा और महा निर्मल और प्रेम और आनन्द का भंडार है। और वहाँ, वह स्वभाव और तरंगें जो पिंड और ब्रह्माण्ड में माया के मसाले के संग से पैदा हुये हैं, बिल्कुल नहीं हैं। इस वास्ते जो कोई उस धाम में पहूँचना चाहे, उसको ज़रूर है कि इन स्वभावों और चाहों और तरंगों से न्यारा हो जावे। और यह बात अंतर और बाहर के सतसंग से, जिससे मन और सुरत निर्मल होकर घट में चढ़ेंगे, हासिल होगी। इस वास्ते प्रेमी अभ्यासी को मुनासिब है कि जो कार्रवाई संतों ने बताई है, उसके मुवाफ़िक़ अभ्यास करके और दया-मेहर संत सतगुरू राधास्वामी दयाल की, संग लेकर अपनी हालत बदलता जावे, यानी दिन २ सफ़ाई हासिल करे और प्रेम बढ़ाता जावे, तब उस धाम में पहूँचने के क़ाबिल हो जावेगा।

११—कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल सब रचना से न्यारे हैं। इस वास्ते जो कोई उनके धाम में पहूँच कर उनका

दर्शन चाहे, उसको भी सब दुनिया की प्रीतें आहिस्ता २ कम करके एक उन्हीं की गहरी प्रीत दृढ़ करनी चाहिये। तब वहाँ पहुँचना और ठहराव होगा। और जो किसी क़िस्म की वासना इस तरफ़ की रही आई, तो चलना और चढ़ना मुश्किल होगा। इस वास्ते सर्व वासना, सिवाय उनके मिलने की आस के, आहिस्ते २ घटानी और दूर करनी ज़रूर चाहिये। और यह काम सच्चे परमार्थी का राधास्वामी दयाल अपनी दया से आप बनावेंगे।

१२—इस वास्ते कुल्ल सच्चे परमार्थियों को ऊपर लिखी हुई समझौती को लेकर चाहिये कि जहाँ तक बन सके अपनी सफ़ाई करें और संसारी स्वभाव छोड़ते जावें और दुनिया की चाह और तरंगें कम उठावें और मुख्य प्रीति संत सतगुरु और राधास्वामी दयाल के चरणों में लावें और सच्चा और पक्का इरादा उनके धाम में पहुँचने का करें, तो उनकी मेहर और दया से सहज २ काम बनता जावेगा, और एक दिन सुरत निज धाम में पहुँच कर परम आनन्द को प्राप्त होगी।

१३—बग़ैर दया और मदद राधास्वामी दयाल के, यह काम दुरुस्त और पूरा नहीं बन सक्ता। क्योंकि जीव निबल है और पिंड में मन और माया का ज़ोर बहुत भारी है, इस वास्ते जो सच्चे प्रेमी का इरादा अपने सच्चे

उद्धार कराने का पक्का और मज़बूत है, तो राधास्वामी दयाल ज़रूर अपनी मेहर और दया से उसकी आशा पूर्ण करेंगे और मन और माया और काल और करम के विघ्नों को हटाते और दूर करते जावेंगे, और अपने चरणों का प्रेम उसके हिरदे में दिन २ बढ़ाते जावेंगे और माया के भोग और पदार्थों का भाव उसके मन से हटा कर एक दिन उनसे न्यारा कर देंगे।

बचन ८

हाल सच्चे वेदान्ती यानी जोगी ज्ञानियों का, जो कि षट चक्र बेध कर ब्रह्म पद में पहुँचे, और वर्णन इस बात का कि आज-कल के ज्ञानी कसरत से वाचक हैं और उनके संग से जीव का सच्चा कल्यान या उद्धार नहीं होगा

१—जो कि आज कल ब-सबब ज़्यादा फैलने विद्या के, वाचक ज्ञान का बहुत ज़ोर है और विरक्त और गृहस्थ, बग़ैर जाँचने अपने अधिकार के, थोड़े ग्रन्थ ज्ञान के पढ़ कर कसरत से ज्ञानी और सूफ़ी होते जाते हैं, और असल में

उनकी हालत बहुत कम बदलती है, बल्कि बहुतेरों के स्वभाव ब-दस्तूर संसारियों के मुवाफ़िक़ बने रहते हैं, और अपने ज्ञान की समझ का अहंकार ज़्यादा हो जाता है, इस वास्ते मुनासिब मालूम हुआ कि सच्चे ज्ञानियों का हाल थोड़ा सा लिखा जावे कि जिससे वाचक ज्ञान का मुक़ाबला करके, उसकी ओछी हालत की जाँच हो जावे और सच्चे परमार्थी उससे बचे रहें और उनका अकाज न होने पावे।

२—जोगी ज्ञानी उनको कहते हैं कि जो प्राणों को साधना करके षट चक्र को बेंध कर ब्रह्म पद में पहुँचे और वहाँ से ब्रह्म को नीचे के सर्व देश में व्यापक देख कर, उसके लक्ष रूप में समाये और अपने आपे को उसमें लै कर दिया।

३—इन जोगी ज्ञानियों ने पाँच उपासना मुक़र्रर करीं। पहिली गणेश की गुदा चक्र में, दूसरी विष्णु की नाभि में, तीसरी शिव की हिरदे में, चौथी आत्मा यानी शक्ति की कंठ में और पाँचवीं परमात्मा या सूरज ब्रह्म का छठे चक्र में, और उसके परे चिदाकाश में समाये।

४—और जोगेश्वर ज्ञानी सहसदल कँवल को पार करके त्रिकुटी यानी ओङ्कार पद में पहुंचे और उस के लक्ष स्वरूप में, जो अरूप है, लीन हुये, और कोई २ पार ब्रह्म पद में जो संतों का दसवाँ द्वार है, समाये, और वहाँ से उस

चैतन्य को नीचे के सर्व देशों में व्यापक देखा और कुल्ल सूरतों में उसी का ज़हूरा और जलवा देख कर मगन और तृप्त हो गये।

५—इन जोगी और जोगेश्वर ज्ञानियों ने अपनी बानी और बचन में ब्रह्म पद की महिमा ज़्यादा से ज़्यादा गाई और फ़रमाया कि वह ब्रह्म सर्व व्यापक है और सब लोकों में उसी का जलवा और प्रकाश मौजूद है और असल में सब उसी का ज़हूरा है।

६—और उन्होंने ब्रह्म की प्राप्ति प्राणायाम यानी अष्टांग योग की साधना करके वर्णन करी और उस अभ्यास का तरीक़ा, मय उसके संजमों के, मुफ़स्सिल तौर पर अपने ग्रन्थों में बयान किया।

७—और यह भी बयान किया कि पहले उपासना करनी ज़रूर चाहिये और जब वह उपासना पूरी होगी, तब चार साधन यानी (१) वैराग (२) विवेक (३) षट सम्पत्ति (सम, दम, उपरति, तितिक्षा, सरधा, और समाधानता और (४) मुमोक्षता हासिल होंगे, तब वह उपासक यानी मुमोक्षु ज्ञान के ग्रन्थों के पढ़ने का अधिकारी होगा।

८—और इस बात को निहायत ज़ोर देकर कहा कि जिस शख़्स को ऊपर के बयान किये हुये चारों साधन पूरी तौर से हासिल नहीं हुये, वह ज्ञान के ग्रन्थों के पढ़ने का

अधिकारी नहीं है, और जो कोई बग़ैर हासिल हुये उन साधनों के, ज्ञान के ग्रन्थों को पढ़ेगा उसका अकाज होगा यानी बग़ैर पूरी उपासना किये हुये अगर कोई ज्ञान के बचन सुनेगा या पढ़ेगा या कहेगा, तो उसके हक़ में वह ज़हर के मुआफ़िक़ असर करेंगे, यानी वह वाचक ज्ञानी होकर अहंकारी हो जावेगा और इस वास्ते उसकी मुक्ति नहीं होगी।

९—और उन्हीं जोगी ज्ञानियों ने यह भी वर्णन किया कि शरीर में पाँच कोश यानी परदे या ग़िलाफ़ हैं और पाँचवें में या उसके परे आत्मा का बासा है। सो जब तक कि यह परदे या ग़िलाफ अंतर अभ्यास करके न फोड़े जावेंगे, तब तक अभ्यासी को अपने स्वरूप का दर्शन नहीं होगा, और वह कोश या ग़िलाफ़ ये हैं :--(१) अन्न मई कोश (२) प्राण मई कोश (३) मनो मई कोश (४) विज्ञान मई कोश (५) और आनन्द मई कोश।

१०—इससे साफ़ जाहिर है कि जोगी ज्ञानियों ने आत्मा की प्राप्ति, बाद तै करने मन और बुद्धि के मुक़ाम के, कही है और वाचक ज्ञानी स्थूल शरीर में इन्द्रियों के मुक़ाम पर बैठे हुये अपने आप को अत्मा और परमात्मा या ब्रह्म मानते और क़रार देते हैं। यह समझ उनकी ग़लत है और इसी समझ का सच्चे ज्ञानियों ने निषेध किया है।

११—इस में कुछ शक नहीं कि आत्मा अपनी धारों से कुल्ल शरीर में व्यापक है और उसी की धारें, मन और इन्द्रिय वग़ैरा को चैतन्य कर रही हैं। पर आत्मा का स्थान जहाँ से कि ये धारें छूट रही हैं, जुदा है। और जब तक कि अभ्यासी, अभ्यास करके सब परदों को फोड़ कर उस मुक़ाम तक नहीं पहूँचेगा, तब तक अपने स्वरूप को नहीं पावेगा और न उसका आनन्द, जैसा कि चाहिये, उस को प्राप्त होगा और न मन और इन्द्रिय उसके क़ाबू में आवेंगे। फिर परमात्मा या ब्रह्म पद में उसकी पहुँच कैसे हो सकती है?

१२—इस सबब से वाचक ज्ञानी कि जिन्होंने सिर्फ़ सिद्धान्त के बचन ग्रन्थों से छाँट कर पढ़ लिये हैं और थोड़ी-बहुत उनकी समझ हासिल की है, पर अंतरी अभ्यास किसी क़िस्म का नहीं किया और जो कुछ अभ्यास किया भी, तो स्थूल या सूक्षम शरीर के पार नहीं गये, तो उनका अपने आप को आत्मा या परमात्मा या ब्रह्म मानना, बग़ैर पहुँचे हुये उस पद के, ग़लत है। और इसी वजह से वे ग्रन्थों से समझौती लेकर और ऐसी ग़लत धारणा धारण करके अहंकारी हो जाते हैं और बर्ताव और रहनी उनकी संसारी जीवों के मुवाफ़िक़ (जिन्होंने ज्ञान के ग्रन्थ नहीं पढ़े और सिद्धान्त के बचन नहीं सुने) रहती है, और यही सबब उन के नुक़सान और अकाज का हुआ।

१३—वाचक ज्ञानियों का क़ौल है कि जब कि ब्रह्म सब जगह व्यापक है तो जाना-आना कहाँ है। सिर्फ़ इस क़दर अभ्यास ज़रूर है कि जिस से मन थोड़ा-बहुत स्थिर हो जावे और बाद उसके विचार या अहंग्रह यानी अहंब्रह्म उपासना करते हैं। विचार से मतलब यह है कि सब रचना का निषेध करके कि हम यह नहीं, वह नहीं, केवल आत्मा ही आत्मा या ब्रह्म हो ब्रह्म हैं और अपने तईं वही रूप ख़्याल करके अपने ख़्याल को पकाते हैं। और अहंग्रह उपासना से मतलब यह है कि अपने तईं ब्रह्म रूप और बाक़ी सब रचना को मिथ्या समझ कर, इसी समझ को दृढ़ करते हैं। और बाज़े दृष्टि का साधन करके जो रोशनी कि उनको नज़र आती है, उसी को आत्मा का प्रकाश समझ कर उसी में अपनी वृत्ति को लीन करते हैं और समझते हैं कि आत्मा का दर्शन हमको होता है। और शुरू में मन के स्थिर करने के वास्ते कोई २ आजपा जाप यानी स्वाँसा के साथ ओङ्ग सोहंग का सुमिरन थोड़े दिन के वास्ते करते हैं। और कोई २ अपने तौर पर शब्द के सुनने का साधन चन्द रोज़ करके फिर उसको छोड़ देते हैं और ऐसा ख़्याल करते हैं कि शब्द मायक है, थोड़े दिन वास्ते ठहराने मन के उसका साधन मुनासिब है, पर जो कि माया और सब पसारा उसका मिथ्या है, इस वास्ते शब्द का अभ्यास भी

छोड़ देना और सिर्फ़ ब्रह्म में अपनी वृत्ति को लै करना मुनासिब समझते हैं।

१४—अब मालूम होवे कि यह सब साधन जिनका ज़िक्र ऊपर हुआ, वास्ते उद्धार जीव के, काफ़ी नहीं है। और जब तक कि कोई ख़ास जतन चलने और चढ़ने जीव आत्मा यानी सुरत का न किया जावे यानी माया की हद्द के पार जाने का अभ्यास अमल में न आवे, तब तक विचार और अहंग्रह उपासना (जो कि मन और इन्द्रियों के स्थान पर बैठ के की जाती है), वास्ते पहुँचने निर्मल चैतन्य देश के कुछ फ़ायदा नहीं दे सकते हैं, क्योंकि निर्मल चैतन्य देश जो कि सुरत का निज स्थान है, माया के घेर के पार और ऊँचे से ऊँचा है।

१५—इस में कुछ शक नहीं है कि चैतन्य सब जगह मौजूद है, लेकिन ब-सबब हायल होने माया के परदों के, वह सब जगह एक-रस यानी यकसाँ नहीं है। इसी वजह से पिछले जोगी ज्ञानियों ने चैतन्य में विशेष और सामान्य का भेद किया। विशेष चैतन्य से यह मतलब है कि वहाँ माया सूक्षम है या कम है और सामान्य से मतलब यह है कि वहाँ माया स्थूल है या ज़्यादा है, और ऐसा सामान्य चैतन्य वग़ैर मदद विशेष चैतन्य के कुछ कार्रवाई नहीं कर सकता यानी माया के परदों में ढका हुआ कुछ काम नहीं कर सकता।

१६—अपने पिंड के हाल को, जो कि ब्रह्माण्ड का नमूना है, मुलाहज़ा करने से मालूम होगा कि जीव चैतन्य इस में भी सिर से पैर तक एक-रस व्यापक नहीं है यानी आला दरजे की क़ुव्वतें सिर में, जो ऊँचे से ऊँचा और पहिला दर्जा है, मौजूद है और गले से कमर तक जो कि दूसरा दर्जा है, कम दर्जे की क़ुव्वतें कार्रवाई करती हैं। और जब किसी बीमारी में (जैसे सन्निपात में) सिर की तरफ खिंचाव रूह का ज़्यादा हो जाता है तो इस दूसरे दर्जे की क़ुव्वतें बिलकुल बेकार हो जाती हैं यानी उनकी कार्रवाई बन्द हो जाती है। और सोते वक़्त में भी जब कि रूह का किसी क़दर खिंचाव दिमाग़ की तरफ़ मामूली तौर पर होता है, कुल्ल इन्द्रियाँ उस वक़्त बेकार हो जाती हैं। और तीसरे दर्जे में यानी कमर से नीचे २ कोई ख़ास कुव्वत सिवाय चलने-फिरने की ताक़त के नहीं है और वह ताक़त भी दिमाग़ से आती है। इन दोनों दर्जों की कार्रवाई अव्वल दर्जे की मदद से यानी जब रूह की धार दिमाग़ से नीचे उतरती है, जारी होती है और उस दर्जे में विशेष चैतन्य है और नीचे के दर्जों में सामान्य चैतन्य है।

१७—इसी तरह इस पृथिवी लोक में चैतन्य व्यापक है। वह सामान्य चैतन्य है और जब तक सूरज से जो

उसका विशेष चैतन्य है, किसी क़िस्म की किरनियाँ के वसीले से मदद (यानी गरमी और रोशनी) न आवे तब तक यहाँ का चैतन्य कुछ कार्रवाई (यानी उत्पत्ति करना रचना की और उसकी सम्हाल) नहीं कर सक्ता है, फिर ऐसे व्यापक चैतन्य से क्या काम निकल सकता है ? और जो कि वह हर वक़्त इस लोक की रचना की कार्रवाई में लिप्त हो रहा है या उसका संगी और समीपी है और माया से घिरा हुआ है, तो जो कोई उसमें लीन होगा या उससे मिलेगा, वह भी इसी रगड़े में पड़ा रहेगा यानी उत्पत्ति प्रलय के चक्कर से बाहर नहीं जावेगा ।

१८—और मालूम होवे कि यह सूरज भी, ब-निस्बत उस बड़े सूरज के, जिसके गिर्द यह मय अपने तारागण के घूम रहा है, सामान्य चैतन्य है और वह बड़ा सूरज इसका विशेष चैतन्य है । इसी तरह दो दर्जे के ऊपर सत्तपुरुष और उसके परे राधास्वामी पद है जिसको अगर महा विशेष चैतन्य कहो, तो हो सकता है । यह दोनों पद निर्मल चैतन्य देश में हैं यानी माया के घेर के पार हैं । इनमें सदा आनन्द रहता है, क्योंकि सिवाय चैतन्य के वहाँ कोई दूसरी चीज़ नहीं है और चैतन्य ऐन आनन्द स्वरूप है ।

१९—इस वास्ते जब तक कि कोई अभ्यास करके एक विशेष चैतन्य से दूसरे में, और फिर महा विशेष चैतन्य

में नहीं पहुँचेगा, तब तक उसका सच्चा और पूरा उद्धार नहीं होगा, यानी जब तक कि माया के घेर के पार नहीं जावेगा, तब तक जन्म-मरण और दुख-सुख से निवृत्ति नहीं होगी।

२०—अब ख़्याल करो कि जिस पद में जीव को समाना चाहिये या पहुँच कर वहाँ का आनन्द-बिलास देखना चाहिये, वह हमारे तन में, बैठक के मुक़ाम से बहुत दूर है और रास्ते में कई मंज़िलें या ठेके हैं, सो जब तक कि शब्द-अभ्यासी और शब्द-भेदी गुरू से भेद लेकर और अभ्यास करके चढ़ कर दयाल देश में नहीं पहुंचेगा, तब तक उसका सच्चा और पूरा उद्धार और जन्म-मरण से छुटकारा नहीं होगा।

२१—सिवाय इसके, पिछले जोगी-ज्ञानियों ने ब्रह्म के तीन स्वरूप या तीन दर्जे बयान किये यानी शुद्ध ब्रह्म और साक्षी ब्रह्म और माया-सबल ब्रह्म। अब ख़याल करो कि मुवाफ़िक़ इन दर्जों के, जो कोई शुद्ध ब्रह्म के पद में नहीं पहुँचेगा, तब तक वह जोगेश्वर ज्ञानी नहीं हो सक्ता और वास्ते प्राप्ति मुक्ति के, माया देश को छोड़ कर शुद्ध ब्रह्म पद में पहुँचना ज़रूर है। फिर कई दर्जे ब्रह्म में, ब-सबब हायल होने माया के हो गये और सब दर्जों में वही ब्रह्म, व्यापक हुआ, पर वास्ते बचाव जन्म-मरन और काल-क्लेश

और प्राप्ति परम आनन्द और मुक्ति के (मुवाफ़िक़ जोगी ज्ञानियों के मत के) नीचे के देशों को छोड़ कर ऊँचे देश यानी शुद्ध ब्रह्म में जाना ज़रूर हुआ।

२२—ऊपर के बयान से साफ़ ज़ाहिर है कि वाचक ज्ञानियों का यह क़ौल कि "जब कि ब्रह्म सर्व-व्यापक है तो जाना-आना कहाँ है", बिलकुल ग़लत है और इस हिसाब से इन लोगों का उद्धार योगी-ज्ञानियों के दर्जे तक का किसी सूरत में मुमकिन नहीं है।

२३—इसी तरह जोगी और जागेश्वर ज्ञानियों ने चार अवस्थाऐं, यानी जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति और तुरिया बयान की हैं और अभ्यास करके तुरिया और तुरियातीत अवस्था में पहूँचना लिखा है। लेकिन वाचक ज्ञानियों ने तुरिया अवस्था को काट कर, जो चैतन्य कि तीन अवस्थाओं में व्यापक है, उसी को तुरिया क़रार दिया यानी चलना और चढ़ना जिससे कि तीन अवस्थाओं के पार जाना मुमकिन था, नहीं माना, और इस सबब से उस निर्मल गति की, जो तुरिया और तुरिया-तीत के दर्जे में पहूँच कर हासिल होती, उनको ख़बर भी नहीं हुई, यानी जाग्रत अबस्था के मुक़ाम पर उनका बासा रहा और इस वास्ते मन और इन्द्रियाँ उन पर ग़ालिब रहे और उनका ज्ञान वाचक रहा।

२४—ये लोग सिद्धान्त की बातें बनाते रहेंगे

पर ब-सबब पड़े रहने मलीन माया के देश में, इनकी हालत नहीं बदलेगी और सच्चा ब्रह्मानंद इनको कभी हासिल नहीं होगा।

२५—और एक भारी नुक़सान की बात वाचक ज्ञानियों में यह है कि ये उपासना यानी भक्ति से विरोध रखते हैं, और माया को मिथ्या कह कर, कुल्ल नाम रूप की रचना को नाशमान समझ कर, उसका निरादर करते हैं। और हरचंद आप शरीर का व्यवहार जारी रखते हैं और मेले-तमाशे और देशान्तर की सैर वग़ैरा में हमेशा भरमते रहते हैं और ज्ञान की पोथियाँ पढ़ते और पढ़ाते रहते हैं, और फिर इन सब कामों को भरम बताते हैं और कहते हैं कि जब कि सिवाय ब्रह्म के और कोई वस्तु नहीं है और हम आप वही ब्रह्म स्वरूप हैं तो फिर उपासना किस की करें और उपासना की क्या ज़रूरत है जब कि सिवाय ब्रह्म के कोई दूजा असल में नहीं है ?

२६—बल्कि, बाज़े ज्ञानी इस क़दर बढ़ कर बोलते हैं कि रचना असल में हुई नहीं है, और न मौजूद है, और जो कुछ कि हम देखते हैं और कहते-सुनते हैं, सब भर्म है और फिर बर्ताव में अपने शरीर, रूप और कुल्ल संसार को सत्य देखते और समझते हैं। ये लोग सिर्फ़ भक्ति न करने के वास्ते ऐसी बातें कि जो उनके व्यवहार और बर्ताव के बिलकुल

ख़िलाफ़ है (यानी कुल्ल रचना और कुल्ल कार्रवाई को भर्म समझना), बनाते हैं।

२७—नतीजा ऐसी बातों का यह होता है कि इन वाचक ज्ञानियों के हृदय से भय और भाव यानी अदब और ख़ौफ़ और प्रेम, गुरू और मालिक के चरणों का, बिलकुल जाता रहता है। और ये लोग निरभय हो कर संसार में बर्तते हैं, यानी मन और इन्द्रियों के कहने में चलते हैं और अपने आप को ब्रह्मरूप मान कर समझते हैं कि किसी काम का असर उन पर नहीं पहुँचता। और जो ग़ौर करके देखा जाऐ तो मालूम होता है कि इन लोगों की रहनी मुवाफ़िक़ संसारी विद्यावानों के, बल्कि अक्सर उन से भी कम दर्जे की है, क्योंकि ये लोग धनवान और हुकूमतवान लोगों को हमेशा ढूंढ़ते रहते हैं कि कोई उनका बचन माने और ख़ातिरदारी करे और जब ऐसा मौक़ा मिल जावे तब भोगों में बे-तकल्लुफ़ बर्तते हैं।

२८—अब ग़ौर करने की बात है कि जो इन वाचक ज्ञानियों को थोड़ा भी आत्मानन्द आया होता तो इन का बर्तावा ऐसा नहीं होता जैसा कि आम तौर पर देखने में आता है और जिसका थोड़ा हाल ऊपर लिखा गया।

२९—यह सब कसरें, ब-सबब न करने उपासना या भक्ति के, गुरू और मालिक के चरणों में, पैदा होती हैं यानी

जो चार साधन कि मुमोक्षु को, पेश्तर पढ़ने ज्ञान के ग्रन्थों के, हासिल होने चाहियें, वे इन लोगों में नहीं पाये जाते क्योंकि वे ईश्वर की दात है और बग़ैर उपासना किये और उपास्य से मिलने के, वे प्राप्त नहीं हो सक्ते। और ये वाचक ज्ञानी नाम रूप को पहिले ही मिथ्या समझ कर भक्ति को उड़ा देते हैं और ईश्वर और गुरू दोनों की, इनकी नज़र में बे-क़दरी हो जाती है। और ये लोग ब्रह्म को सर्व-व्यापक मान कर कोई अन्तरी अभ्यास चलने और चढ़ने का (जिस से उनका संसारी स्वभाव और मन की हालत बदले) नहीं करते। इस सबब से ये लोग सिर्फ़ सिद्धान्त के बचन सुन कर और याद करके अहंकारी और बे-परवाह हो जाते हैं और अपनी कसरों पर ज़रा निगाह नहीं करते, और, जो कोई जतावे तो क्रोध करने को तैयार हो जाते हैं।

३०—अब ख़्याल करो कि इन वाचक ज्ञानियों ने किस क़दर धोखा खाया और किस क़दर ग़लती में पड़े हैं कि जिसके सबब से उनका भारी नुक़सान हुआ, यानी ब्रह्म पद की प्राप्ति से महरूम रहे, और बर-ख़िलाफ़ उसके, अपने आपको ब्रह्म रूप मान कर इस क़दर अहंकारी हो गये कि अब जो कोई उनको उनकी ग़लती बतावे और सीधा और सच्चा रास्ता उद्धार का समझावे तौ बिल्कुल नहीं सुनते और उल्टा

समझाने वाले को भूला हुआ और भरमा हुआ ख़्याल करके, उससे क्रोध और विरोध करने को तैयार होते हैं, जिसके सबब से इनकी दुरुस्ती यानी उद्धार किसी हरह से मुमकिन नहीं है।

३१—मालूम होवे कि जोगी और जोगेश्वर ज्ञानियों का सिद्धांत (यानी ब्रह्म और पार-ब्रह्म पद) माया की हद्द में रहा। इस सबब से उन्होंने ज्ञान की मुख्यता की, यानी ब्रह्म के लक्ष स्वरूप अथवा अरूप में समाये, क्योंकि उन्होंने देखा कि ब्रह्म का वाच्य स्वरूप हमेशा क़ायम नहीं रहता, यानी जब रचना का अभाव होता है (प्रलय और महा प्रलय के वक़्त) तब वह भी सिमट जाता है और उसके लोक की रचना भी सिमट जाती है, और इस सबब से ब्रह्म उपासकों की मुक्ति की हालत हमेशा और यकसाँ क़ायम नहीं रह सक्की और रचना में आवागमन भी नहीं बन्द हो सक्का। इस वास्ते उपासना की सिर्फ़ इस क़दर ज़रूरत समझी गई कि जिसमें मुमोक्षु भक्ति करके स्थूल, सूक्षम और कारण रचना के पार चल कर अपने उपास्य के सन्मुख यानी ब्रह्म लोक में पहुँचे, और इसी तरह अभ्यास करके, निर्मल होकर, क़ाबिल समावने ब्रह्म के लक्ष स्वरूप यानी अरूप पद के, हो जावे यानी ज्ञान पद को प्राप्त होवे, क्योंकि जो ज्ञान पद में रसाई न हुई और

उपासना करता रहा या उपास्य के लोक में पहुँच कर वहीं ठहर गया, तो आवागमन दूर नहीं हुआ।

३२–वास्ते दुरुस्ती उपासना के, उपास्य के नाम, रूप, लीला और धाम की ज़रूरत है। और जब कि नाम और रूप का मायक होना और उसका समय २ पर प्रगट होना और सिमट जाना मालूम किया गया, तब उपासना करने वालों का पूरा उद्धार यानी आवा-गमन से रहित होना नहीं माना गया। इस सबब से भक्ति की ज़रूरत सिर्फ़ वास्ते तै करने, रूपवान रचना की हद के, मुनासिब समझी गई, और बाद उसके, लक्ष स्वरूप की महिमा विशेष मानी गई कि वहाँ पहुँचने से (ज़ाहिरी तौर से) आवा-गमन दूर हो गया, क्योंकि मुमोक्षु नाम और रूप के परे पहुँच कर ब्रह्म के लक्ष यानी सिंध स्वरूप में समाया और इसी का नाम ज्ञान यानी सच्ची मुक्ति या उद्धार रक्खा गया।

३३—इस क़ायदे के मुवाफ़िक़, ज्ञान (यानी अपने निज अरूप पद को प्राप्त होना) अव्वल नम्बर क़रार दिया गया। और उपासना यानी भक्ति का दर्जा दूसरा रक्खा गया। और इससे यह मतलब समझा गया कि उपासक ब्रह्म के लोक में पहुँच कर अपने उपास्य या भगवंत के समीप या सनमुख रह कर और दर्शन के [illegible]द और विलास को प्राप्त हो कर, बहुत काल के

वास्ते सुखी हो जावे। लेकिन प्रलय या महा प्रलय के समय ब्रह्म और ब्रह्म लोक का सिमटाव और अभाव ज़रूर होगा। और उस वक़्त ब्रह्म उपासकों की भी हालत बदल जावेगी और फिर रचना में आना पड़ेगा। इसी सबब से ज्ञान के मुक़ाबले में भक्ति की महिमा कम ठहरी और ज्ञानियों की नज़र में उसका आदर घट गया। लेकिन अभ्यासियों के वास्ते उसको क़ायम रक्खा और जब उपासना पूरी हो गई यानी उपासक उपास्य के लोक में पहुँच गया और उसका दर्शन करके चारों साधन उसको प्राप्त हो गये, फिर भक्ति की ज़रूरत नहीं रही। फिर ज्ञान के हासिल करने का जतन बाक़ी रहा यानी सिद्धान्त के बचन सुन कर और समझ कर, दिन २ अभ्यास ब्रह्म के लक्ष स्वरूप में यानी अरूप पद में समाने का करके, अपना आपा जिस क़दर कि बाद भक्ति के बाक़ी रहा, सिद्धान्त पद में पहुंच कर निज अरूर में लीन कर दिया।

३४—वाचक ज्ञानियों ने जब सिद्धान्त के बचन सुने और ऊपर का लिखा हुआ हाल उनको मालूम हुआ तो उन्होंने शुरू ही से भक्ति का निरादर किया और ब्रह्म बन बैठे, और कहने लगे कि भक्ति में त्रिपुटी (यानी उपास्य उपासक और उपासना) क़ायम रहती है और इस सबब से दूजा भाव बना रहता है और आवा-गमन दूर नहीं

और ज्ञान में सिर्फ़ ब्रह्म हो ब्रह्म रहता है और दुनिया का अभाव है और इस वास्ते जन्म-मरण भी नहीं रहता। इस सबब से उन्होंने बग़ैर अभ्यास करके तै करने नाम और रूप की रचना के, पहले ही से नाम और रूप का अभाव और निरादर कर दिया, यानी ब्रह्म के वाच्य स्वरूप से लेकर नीचे से नीचे की रचना तक, सब को नाशमान और मिथ्या कह कर उपासना को फ़िज़ूल समझा। और इस सबब से वे जहाँ के तहाँ रहे यानी स्थूल मन और इन्द्रियों के घाट पर बैठे हुये सिद्धान्त की बातें और ब्रह्म के वाच्य और लक्ष स्वरूप का बुद्धि से निर्णय करके लक्ष रूप की धारणा करने लगे, और सच्चे और प्रेमी परमार्थियों पर, जो भक्ति और अंतर अभ्यास करके निज अरूप पद में पहुँचने का जतन कर रहे हैं, तान मारने लगे कि इनका जन्म-मरण नहीं छूटेगा और ब-सबब न होने ज्ञान (बाचक) के उन का पूरा उद्धार नहीं होगा।

३५—जो कोई इन वाचक ज्ञानियों के क़ौल और हाल यानी बोली और रहनो पर ग़ौर से नज़र करे, तो उस को साफ़ मालूम हो जावेगा कि इन लोगों ने अपने आचार्यों के यानो जोगी और जोगेश्वर ज्ञानियों के सिद्धांत के बचन सुन कर जल्दी की, और जो बचन कि उन्होंने निसबत उपासना और अंतर अभ्यास के फ़रमाये थे, उन पर

मुतलक़ तवज्जह नहीं करी, यानी बग़ैर तीन लोक की रचना के (अभ्यास करके) पार जाने के, पार पद को (जो उनका सिद्धान्त था) सही करके उसी की धारणा, सिर्फ़ अक़्ली विचार करके, शुरू की और ऐसा यक़ीन किया कि उस रचना का ज़बानी या मानसी निषेध करके पार पद में पहुँचना या अपने तईं वही (लक्ष रूप) समझ कर पूरे बन जाना मुमकिन है। यह बड़ा भारी धोखा इन वाचक ज्ञानियों ने खाया और अपना भारी अकाज किया, यानी चौरासी के चक्कर से नहीं बचे, और न इधर के रहे और न उधर के हुये, यानी न तो भक्ति करके ब्रह्मलोक के आनन्द और विलास को प्राप्त हुए और न ज्ञान करके ब्रह्म के लक्ष स्वरूप में समाये।

३६—सबब इस धोखे का यही हुआ कि वाचक ज्ञानियों ने, मुवाफ़िक़ क़ौल और बचन अपने आचार्यों के, ब्रह्म को सर्व-व्यापक माना और माया और उसकी रचना को मिथ्या समझा बल्कि यहाँ तक कहा कि तीन काल रचना हुई ही नहीं, और है भी नहीं और वही ब्रह्म स्वरूप आप को और कुल्ल को माना और चैतन्य का तन, मन और इन्द्रियों के साथ बंधन और संसार में झुकाव को भर्म समझा। और इस भर्म के दूर करने का इलाज यह क़रार दिया कि सिद्धान्त यानी ज्ञान के बचन सुन कर

और समझ कर अपने आप को निर्मल और निरलेप चैतन्य समझे और इस ख़याल को विचार और अहंग्रह उपासना करके पकावे, तो फिर ज़रूरत भक्ति और दूसरे अभ्यास करने की नहीं रहेगी, क्योंकि आना-जाना उन्होंने नहीं माना। लेकिन जो कि माया और उसकी रचना जब तक कि जहाँ-जहाँ मौजूद है, सच्ची है और माया के देश यानी घेरे में बराबर जारी है और रहेगी, और सिर्फ़ ज़बानी जमा-ख़र्च से, बग़ैर उसकी हद्द के पार पहुँचने के, उस से छुटकारा मुमकिन नहीं है, इस सबब से उसको पहिले ही से मिथ्या और ग़ैर-मौजूद और भर्म समझने से इन बाचक ज्ञानियों ने धोखा खाया यानी माया के घेर में ही रहे। और इस सबब से जन्म-मरण से उनका बचाव नहीं हुआ और जो कोई इन को ख़ुद जोगेश्वरों के बचन के ब-मूजिब समझावे कि षट चक्र बेध कर पिंड के परे ब्रह्मांड में जाना चाहिये तो उनका मन (जो कि अपने स्वभाव के मुवाफ़िक़ ऊँचे से ऊँचे और बढ़ से बढ़ की बात बग़ैर मेहनत और तक़लीफ़ के हासिल करना चाहता है) ऐसी समझौती को क़बूल नहीं करता। फिर ये लोग संतों के बचन को जो कि पिंड और ब्रह्मांड के पार दयाल देश में जाने की जुगत बतलाते हैं, किस तरह मानें ? इस वास्ते संतों के सतसंगियों से इन वाचक ज्ञानियों का मेल किसी तरह नहीं हो सक्ता है।

३७—संत सतगुरु जो सच्चे और कुल्ल-मालिक सत्त-पुरुष राधास्वामी दयाल के धाम में पहुँचे, फ़रमाते हैं कि निरंजन जोत, सत्तपुरुष की किरणें यानी बूंदें हैं, और ये दोनों धारें सत्तलोक यानी सत्तपुरुष के चरणों से निकल कर पहिले संतों के दसवें द्वार में ठहरीं और उनका नाम पुरुष-प्रकृति हुआ। यही स्थान तिरलोकी का मूल पद है। यहाँ माया बीज रूप थी। इस सबब से जोगेश्वर-ज्ञानियों को नज़र न आई और उन्होंने उस पद को शुद्ध और पार-ब्रह्म क़रार दिया। फिर वहाँ से उतर कर ये दोनों धारें त्रिकुटी में ठहरीं और यहाँ उनका माया-ब्रह्म नाम हुआ। इसी स्थान से सूक्षम मसाला, तीन लोक की रचना का प्रगट हुआ। फिर यहाँ से उतर कर ये दोनों धारें सहसदल कँवल के मक़ाम पर ठहरीं और दोनों का रूप जुदा २ प्रगट हुआ और शिव-शक्ति और जोत-निरंजन इनका नाम हुआ। यहाँ से पाँचों तत्व और तीनों गुणों की धारा प्रगट होकर निकलीं और इन्होंने नीचे के देश में देवताओं और मनुष्यों और चारों खानों की रचना करी। संतों का देश पार-ब्रह्म से बहुत ऊँचा रहा, जहाँ माया का नाम और निशान भी नहीं है यानी जो कुछ कि उसका सूक्षम से सूक्षम बीजा था, वह निकाल कर नीचे उतार दिया गया। उस देश को निर्मल चैतन्य और महा शुद्ध धाम समझना

चाहिये। वहाँ, एक चैतन्य ही चैतन्य है और किसी तरह की मिलौनी दूसरे की नहीं है। और जो कि चैतन्य महा आनन्द स्वरूप है, इस वास्ते वहाँ की रचना भी ऐन चैतन्य और आनन्द स्वरूप है और हमेशा एक-रस क़ायम रहती है और यहाँ ही सत्त पुरुष राधास्वामी सच्चे कुल्ल-मालिक का निज धाम है।

३८—संतों का उपास्य और भगवंत कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल हैं। वे निर्मल चैतन्य और प्रेम और अमृत के निज भंजार हैं और सुरत-चैतन्य (यानी आत्मा) उन्हीं की अंश है। इस तरह संतों का भगवंत यानी कुल्ल-मालिक और उसका धाम (यानी दयाल देश) और उसके चरणों की भक्ति (जो कि ऐन प्रेम की धार है) अमर और अजर हैं।और उनकी अंश सुरत भी अमर और अजर है। पर वह माया के देश में उतर कर और देही और मन और इन्द्रियों के साथ बंध कर और माया के पदार्थों की (यानी भोगों की) चाह उठा कर इस संसार में दुख-सुख भोगती है। और जो कि देही, जो माया के मसाले की बनी हुई है और हमेशा उसका अंग-अंग बदलता रहता है, और भाव-अभाव होता रहता है, सदा एक-रस क़ायम नहीं रहती, इस सबब से सुरत भी उसके साथ बंधन करके जन्म-मरण के चक्कर में पड़ी रहती है। यह चक्कर,

जब तक कि सुरत अपने निज मालिक राधास्वामी दयाल और उनके धाम का भेद पाकर अपने घर की तरफ नहीं उलटेगी, और जैसे २ देही, उतार के वक़्त हर एक मंडल में धारण करती आई है, उन से चढ़ाई के वक़्त अपना ताल्लुक़ और बंधन छोड़ती न जावेगी, नहीं मिटेगा। इस चक्कर का जोर दयाल देश के नीचे-नीचे, जहाँ कि माया की मिलौनी चैतन्य के साथ हुई है, रहता है। और जब सुरत अभ्यास करके माया को हद्द के पार पहुँचती है, तब ही काल के कष्ट और क्लेश क़ितई दूर हो जाते हैं और निज देश में पहुँच कर परम आनन्द को प्राप्त होती है और अपने सच्चे मालिक राधास्वामी दयाल का दर्शन पाकर हमेशा को मग्न हो जाती है।

३—जबकि संतों का भगवंत और उसका धाम अमर और अजर है और उसकी प्रेमाभक्ती भी हमेशा क़ायम है, इस सबब से संतों ने भक्ति की महिमा विशेष की है और शुरू से अख़ीर तक उसको क़ायम रक्खा, यानी जब तक कि सुरत अभ्यास करती हुई निज धाम में पहुँच कर अपने भगवंत राधास्वामी दयाल का दर्शन पावे, तब तक भेद भक्ति, और जब कि राधास्वामी दयाल के चरणों में रल-मिल जावे, तब उसको अभेद भक्ति कहते हैं, क्योंकि निज धाम में पहुँच कर सुरत की यह गति हो जाती है

कि वह जब चाहे तब अपने मालिक के चरणों में मिल जावे और जब चाहे तब न्यारी होकर उनके दर्शन का विलास करे। इस वास्ते संतों ने ज्ञान का लफ़्ज़ अपनी बानी में इस्तेमाल नहीं किया, क्योंकि उनके मत में सुरत का चैतन्य रूपी आपा हमेशा क़ायम रहता है या उसको ऐसी गति हासिल हो जाती है कि वह जब चाहे तब उस आपे को अपने मालिक के चरणों में लीन कर दे और जब चाहे तब न्यारी होकर उस के दर्शनों का आनंद लेवे। बर-ख़िलाफ़ इसके, ब्रह्म-ज्ञानी जब कि ब्रह्म के लक्ष स्वरूप में लीन हो गये तब अपना आपा खो बैठे यानी फिर न्यारे नहीं हो सक्के और न उन को फिर अपने आपे या ब्रह्म के लक्ष स्वरूप की ख़बर रहती है, क्योंकि उनका आपा बिलकुल गुम हो जाता है।

४०—संत कहते हैं कि जब कि सच्चे जोगी और जोगेश्वर ज्ञानी माया के घेर में रह गये तो उनका पूरा उद्धार नहीं हुआ, चाहे उनको इस बात की ख़बर पड़ी या नहीं, क्योंकि जहाँ तक माया की हद है, वहाँ तक भाव-अभाव रचना का, और उसके साथ जन्म-मरण जीवों का बराबर जारी रहेगा, चाहे वह नित-प्रति होवे या कुछ काल देर करके या बाद प्रलय, और महा प्रलय के। फिर बाचक ज्ञानियों का उद्धार किसी दरजे का भी मुमकिन नहीं है, क्योंकि उनकी बैठक पिंड में मन और इन्द्रियों के मक़ाम

पर रही और चारों साधन उनको असल में पूरे २ प्राप्त नहीं हुए, और न ब्रह्म के वाच्य और लक्ष स्वरूप में उनकी प्रीति या लगन, जैसा कि चाहिये थी आई, और न जीते जी उन्होंने माया के पर्दे जो माबैन उनके और ब्रह्म के हायल हैं, फोड़ कर उनके पार गये। इस सबब से वे (जो कोई संसारी या परमार्थी बासना उनके दिल में ज़बर नहीं रही) मनाकाश में समाते हैं और वहाँ से कुछ अर्से बाद नीचे को उत्थान होकर फिर देह धरते हैं और सिलसिला आवागवन का ब-दस्तूर क़ायम रहता है।

४१—बर-ख़िलाफ़ इस के, संतों का सतसंगी भक्ति करके और दया का बल लेकर सुरत-शब्द योग का अभ्यास करता हुआ, माया की हद्द के पार दयाल देश में पहुँच कर अपने प्रीतम भगवंत यानी राधास्वामी दयाल के सन्मुख पहुँच कर अमर आनन्द और विलास को प्राप्त होता है, और जन्म-मरण के कष्ट और देहियों के क्लेश से हमेशा को छूट जाता है। और ज़्यादा बढ़की बात यह है कि उसका सुरत रूपी निज आपा हमेशा क़ायम रहता है कि जिससे वह अपने सच्चे कुल्ल-मालिक की अपार क़ुदरत को देख कर मग्न होता है और दर्शनों का आनन्द सदा लेता है।

४२—अब समझना चाहिये कि संतों ने जो प्रेमा भक्ती की महिमा विशेष करी, और शुरू से अख़ीर तक,

उसको क़ायम रक्खा, उसका सबब यही है कि उनका उपास्य और उसका निज धाम अमर और अविनाशी है। और जोगी और जोगेश्वर ज्ञानियों का उपास्य और उसका धाम चलायमान और नाशमान है। इस सबब से उनकी भक्ति हमेशा क़ायम नहीं रह सक्ती। और बग़ैर ज्ञान यानी लक्ष या अरूप पद में समाने के, कोई सूरत रिहाई और बचाव की, उनको नज़र न आई। इस सबब से उन्होंने ज्ञान पर ज़्यादा ज़ोर दिया यानी उसकी मुख्यता की ओर भक्ति को थोड़े दिन का यानी ओछा साधन समझ कर उसका निरादर रक्खा और अख़ीर में उड़ा दिया। और वाचक ज्ञानियों ने सच्चे ज्ञानियों के इस बचन को सुन कर या पढ़ कर, शुरू से ही भक्ति का निरादर करके और सिद्धांत के बचनों को पकड़ के, विचार वग़ैरा के साथ अमल-दरामद किया कि जिससे वे जहाँ के तहाँ रहे, क्योंकि उन्होंने ब्रह्म को सर्व व्यापक मान कर चलने और चढ़ने की ज़रूरत न समझी और इस कार्रवाई में उनको अपने बल यानी पुरुषार्थ का भरोसा रहा और समर्थ पुरुष की ओट या सहारा नहीं लिया।

४३—अब ख़्याल करो कि इस देश और पिंड में किस क़दर माया और उसके मसाले का ज़ोर-ओ-शोर है और काम, क्रोध, लोभ, मोह और अहंकार और मन और

इन्द्रियाँ किस क़दर बली हो रहे हैं और कुल्ल जीवों बल्कि देवताओं को भी नाच नचा रहे हैं। फिर जीव की, जो कि महा निबल है, क्या ताक़त है कि बग़ैर सहारे और मदद समर्थ पुरुष के, और बग़ैर कमाई ऐसे अभ्यास के कि जिससे माया देश यानी पिंड और ब्रह्मांड से आहिस्ता २ न्यारे हो कर सुरत ऊँचे देश की तरफ़ चढ़ती जावे और कुल्ल बैरियों को जीत कर दया के बल से माया की हद्द के पार संतों के निज देश में पहुँचे और हमेशा को महा सुखी हो जावे। यानी सच्चा और पूरा उद्धार और अमर देश में अमर आनन्द का प्राप्त होना बग़ैर दया कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल और बग़ैर मदद संत सतगुरु के किसी तरह मुमकिन नहीं है।

४४—फिर बिचारे वाचक ज्ञानियों की कहाँ ताक़त (कि जिन को असल में चारों साधन बल्कि उन में से एक भी साधन यानी सच्चा और पूरा वैराग हासिल नहीं हुआ) कि अपने मन और इन्द्रियों पर ग़ालिब आवें और कुछ भी साधन अपने जीव के कल्याण यानी उद्धार का कर सकें ? अलबत्ता बातें बनाना और जबानी वाच्य और लक्ष स्वरूप ब्रह्म का निर्णय करना ख़ूब आ जाता है, और अपने आपको ब्रह्म स्वरूप मानने से अहंकार ख़ूब बढ़ जाता है और ब-सबब न हासिल होने ब्रह्मानन्द के,

मेले और तमाशों में देश-विदेश भमर्ते रहते हैं। यह हालत उनकी प्रगट नज़राई देती है और विचारवान और समझदार लोग उनकी चाल-ढाल को देख कर आसानी से दरियाफ़्त कर सकते हैं कि वे वाचक ज्ञानी ब्रह्मानंद से खाली हैं, फिर उनको ग्रन्थों के पढ़ने और पढ़ाने और ख़ाली निर्णय और विचार करने का सिवाय तरक़्क़ी मान और अहंकार के, और निरभय होकर बर्तने मन और इन्द्रियों की तरंगों में, क्या फ़ायदा और फल हासिल हुआ?

४५—संतों के सतसंगियों को इस वास्ते मुनासिब है कि ऐसे वाचक ज्ञानियों का जो कि अद्वैत वादी हैं यानी भक्ति से विरोध और नफ़रत रखते हैं और सिवाय विचार और अहंग्रह उपासना के (मैं ब्रह्म हूँ) और कोई अभ्यास नहीं करते, संग और सोहबत न करें, और न इस क़िस्म के ग्रन्थों को, सिवाय एक दफ़े के, वास्ते मालूम करने उनके हाल के, पढ़ें और नहीं तो इनके बचन बे-परवाही और अहंकार के सुन २ कर आलसी और बे-परवाह हो जावेंगे और फिर उनसे अभ्यास संतों की जुगत का नहीं बनेगा और इस सबब से उनके उद्धार में ख़लल पड़ जावेगा।

४६—लेकिन जो वेदान्ती या ज्ञानी या सूफ़ी द्वैत-वादी हैं यानी भक्ति को क़ायम रखते हैं और अपनी सफ़ाई

के वास्ते कोई न कोई अंतरी अभ्यास करते रहते हैं, जैसे अजपा जाप,यानी स्वाँसा से नाम का लेना,या मानसी प्राणायाम करना या दृष्टि का साधन करना या दिल पर नाम की ज़र्ब लगाना या दस प्रकार के शब्द जो पातंजलि योग शास्त्र में लिखे हैं, उनका किसी न किसी तरकीब से चित्त लगा कर सुनना या ब्रह्म को आकाशवत-व्यापक मान कर, चैतन्य यानी रोशन आकाश का ध्यान करना वग़ैरा २, उनका संग और सोहबत शुरू में जब तक कि संत या साधगुरु (संत मत वाले) न मिलें, करने में कुछ हर्ज नहीं होगा, बशर्ते कि यह शख़्स सच्चा परमार्थी है, और अपनी हालत को निरखता-परखता चलता है और जाँच करता रहता है कि किस क़दर मेरी वृत्ति ब्रह्मानंद में लीन होती है। ऐसे शख़्स को इन ज्ञानियों के सतसंग से यह फ़ायदा होगा कि अंदरूनी सफ़ाई हासिल होगी। पर सुरत की चढ़ाई का फ़ायदा बग़ैर अभ्यास संतों की जुगत (सुरत-शब्द योग) के, और किसी तरह हासिल नहीं हो सक्ता। और जब उसको संत सतगुरु या साधगुरू भाग से मिल जावें, तब उस को मुनासिब और लाज़िम होगा कि और सब संग छोड़ कर सिर्फ़ उनका सतसंग करे और उनके उपदेश के मुवाफ़िक़ सुरत-शब्द योग का अभ्यास, प्रेम और अनुराग के साथ करे। तब उसकी सुरत आहिस्ता २ पिंड

से न्यारी होकर ब्रह्मांड यानी ब्रह्मदेश में, और फिर वहाँ से संतों के दयाल देश में पहुँच कर और अपने सच्चे कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल का दर्शन पाकर परम आनंद को प्राप्त होगी। वह कुल्ल-मालिक अकह, अपार, अनंत और अविनाशी है और उसका देश भी अमर है और वहाँ का आनन्द भी अनन्त और अपार और अमर है और वहाँ पहुँचने वाली सुरत भी अमर हो जावेगी।

४७—सच्चे जोगेश्वरों के मत में और संत मत में सिर्फ़ इतना भेद है कि वे एक दरजे नीचे रहे यानी उनका सिद्धान्त पद शुद्ध माया की हद्द यानी ब्रह्मांड में रहा। और इस सबब से उनका आवागमन क़तई नहीं छूटा यानी प्रलय या महा-प्रलय के बाद फिर शरीर धारण करना पड़ा। और संत, माया की हद्द यानी ब्रह्मांड के पार गये और निर्मल-चैतन्य यानी कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल के देश में पहुँच कर बासा किया। और वाचक-ज्ञानियों का यह हाल है कि उन्होंने चलना-चढ़ना (यानी माया देश को तै करना) नहीं माना। इस सबब से वे मलीन माया के देश यानी पिंड में ही रहे और मनाकाश में जिसको उन्होंने ब्रह्म या आत्मा क़रार दिया, समाये। और हरचन्द इन्होंने ब्रह्म को अपना सिद्धान्त माना, लेकिन उसके निज धाम की (जो ब्रह्मांड में वाक़ै है) इनको ख़बर नहीं पड़ी। इस

सबब से इनका दर्जा बहुत नीचा रहा और आवागवन उनका जल्द-जल्द होता रहा।

बचन ६

मन और सुरत की चढ़ाई धीरज के साथ चाहिये और अभ्यास दुरुस्ती से यानी निर्विघ्न करना चाहिये।

१—राधास्वामी मत के अभ्यासियों को चाहिये कि विरह और उमंग लेकर अपना अभ्यास नियम के साथ रोज़-मर्रा करें, और मन और सुरत और दृष्टि को पहिले पाँच-चार मिनट तीसरे तिल के मुक़ाम पर जमावें। और फिर पहले या दूसरे स्थान पर तवज्जह रख कर, यानी चित्त को ठहरा कर, शब्द को सुनें और ध्यान के वक़्त उसी मुक़ाम पर नज़र और चित्त को ठहरा कर स्वरूप का ख़्याल करें (चाहे जब नज़र आवें)। और अभ्यास करने में चढ़ाई के वास्ते नीचे से ऊपर को तरफ़ बहुत ज़ोर न लगावें। सहज स्वभाव, मन और चित्त और नज़र को ऊपर को तरफ़ तान कर मुक़ाम पर शब्द या स्वरूप के आसरे ठहरावें। और होशियारी रक्खें कि दुनिया के ख़्यालात किसी क़िस्म के, मन में न आवें और न किसी तरह की तरंग स्वार्थी वा परमार्थी उठावें। ऐसा करने से अभ्यासी को थोड़ा-बहुत रस और आनन्द शब्द या स्वरूप का ज़रूर मिलेगा।

२—जो अभ्यास के वक़्त हालत विरह और उमंग की न होवे तो चाहिये कि पहले दो शब्द चितावनी और वैराग, और दो शब्द प्रेम के ग़ौर से पढ़ कर अभ्यास में बैठें और अपनी कसरों पर नज़र करके, दीनता के साथ, थोड़ी प्रार्थना, वास्ते प्राप्ति दया के, राधास्वामी दयाल के चरणों में करें और फिर भजन या ध्यान शुरू करें ॥

३—जो इस पर भी मन न माने और गुनावन और ख़्यालात बे फ़ायदा उठावे तो जो भजन करते होवें उस में ध्यान शामिल करदें यानी उसी आसन से बैठे हुये, स्वरूप का ध्यान करें और शब्द की तरफ़ भी तवज्जह रक्खें। और जो फिर भी गुनावन बन्द न होवें तो नाम का सुमिरन भी करते जावें। इस तरह मन थोड़ा-बहुत निश्चल होकर अभ्यास में लगेगा।

४—जो फिर भी गुनावन दूर न होवें और मन दुरुस्ती के साथ भजन में न लगे, तो भजन या ध्यान के वक़्त किसी प्रेम के शब्द या कुछ प्रेम की कड़ियों को अंतर में या थोड़ी आवाज़ के साथ थोड़ी देर गावें। उससे यक़ीन है कि गुनावन दूर हो जावेंगे और भजन और ध्यान का कुछ रस आवेगा।

५—जो इस पर भी मन रूखा-फीका रहे और ख़्यालात बे-फ़ायदा उठावे तो भजन और ध्यान छोड़ कर,

धुन के साथ नाम का सुमिरन करे। इस तरह कुछ सफ़ाई हासिल होगी। और फिर थोड़ी देर ध्यान या भजन करे या दोनों को मिला कर अभ्यास करे तो कुछ फ़ायदा मालूम पड़ेगा।

६—जो किसी वक़्त इन कामों में मन बिलकुल न लगे या रूखा-फीका रहे, तो पाँच शब्द जिन में रास्ते का भेद और चढ़ाई का हाल होवे, ग़ौर के साथ और अर्थों पर नज़र रख कर, आहिस्ते २ या थोड़ी आवाज़ के साथ पढ़ें। और मुक़ाम २ पर जैसा कि उनका ज़िक्र आवे, मन और चित्त को ख़्याल के साथ ठहराते जावें। और शब्द की हर एक कड़ी को चार या पाँच दफ़े या ज़्यादा पढ़ें। और उतनी देर उसी मुक़ाम पर जिसका ज़िक्र कड़ी में है, चित्त को ठहरावें। इस क़िस्म का पाठ थोड़ा-बहुत भजन और ध्यान के बराबर फ़ायदा देगा। और होशियारी रक्खें कि और कोई ख़्याल संसारी या परमार्थी मन में न आवे।

७—जो इन कार्रवाइयों में से कोई भी दुरुस्ती से न बन सके,तो समझना चाहिये कि मन निहायत कर्मी और मलीन है। और उसकी सफ़ाई का इलाज यह है कि चन्द रोज़ होशियारी के साथ सतसंग करे और प्रेमी और साध जन की थोड़ी-बहुत सेवा इख़्तियार करे,और उनके और सतसंग

के बचनों को चित्त देकर सुने और मनन करे। तब कुछ अर्से में सफ़ाई हासिल होगी और शौक़ पैदा हो जावेगा। उससे जो अभ्यास कि ऊपर लिखा गया है, फिर दुरुस्ती से बनना शुरू हो जावेगा।

८—और जो ऐसा मौक़ा न होवे कि कोई दिन सतसंग में रह कर सेवा और अभ्यास करे, तो यह तरकीब करे कि घन्टे-दो घन्टे बाद, पाँच मिनट या सात मिनट, जहाँ बैठा हो या कोई काम हाथों से कर रहा हो या चारपाई पर लेटा हो, आँख बन्द करके, पहले स्थान पर मन और सुरत और दृष्टि को जमा कर, सुमिरन और ध्यान करे। इस क़दर थोड़े अर्से यानी पाँच-सात मिनट में मन चंचल नहीं होगा और न कोई ख़्याल और तरंगें उठावेगा। इस तरह, दिन-रात में जो दस-बारह दफ़े भी यह अभ्यास बन पड़ा तो क़रीब एक घन्टे या कुछ ज़्यादा वक़्त इस निर्मल अभ्यास में लग जावेगा और कोई दिन में थोड़ा-बहुत रस ज़रूर आवेगा कि उसका असर हर वक़्त मालूम पड़ेगा। और मामूली भजन और ध्यान के वक़्त भी पाँच-पाँच, सात-सात मिनट कई बार करके मन स्थिर होकर कुछ रस पावेगा और रफ़्ता २ मामूली अभ्यास भी दुरुस्ती से बनेगा। और सिवाय उसके यह चन्द मिनट का अभ्यास भी और-और वक़्तों पर जारी रहेगा कि जिससे मन और

इन्द्रियों की सफ़ाई होती जावेगी और आनन्द भी आहिस्ता २ बढ़ता जावेगा।

९—जो किसी को वक़्त भजन या ध्यान के, इधर से ग़फ़लत हो जावे और अन्तर में होश रहे, तो यह निशान दुरुस्ती अभ्यास का है। लेकिन जो नींद की सी हालत हो जावे और दोनों तरफ़ का होश न रहे, तो मुनासिब है कि वक़्त शुरू होने ऐसी हालत के, दो-चार मिनट के वास्ते अभ्यास छोड़ कर आँखें खोल दे। और जो सुस्ती दूर न होवे तो उठ कर दो-चार क़दम टहल कर फिर अभ्यास करे। और जो फिर नींद की सी हालत होवे तो वही इलाज करे। और जो फिर भी ग़फ़लत आवे तो उस वक़्त अभ्यास मुल्तवी कर दे।

१०—एक वक़्त कम से कम आध घन्टा या बीस मिनट अभ्यास करना चाहिये और जिस अभ्यास (भजन या ध्यान) में मन ज़्यादा लगे, वह ज़्यादा करना चाहिये और दूसरा कम, लेकिन यह दोनों अभ्यास दो दफ़े रोज़-मर्रा ज़रूर करना मुनासिब है और जहाँ तक मुमकिन होवे, नाग़ा नहीं करना चाहिये।

११—मामूली तौर पर अभ्यास का वक़्त सुबह और शाम का मुनासिब है। और कोई क़ैद नहाने और धोने और जगह वग़ैरा की नहीं है। जिस तरह जिसका दिल

चाहे, आराम के साथ नर्म फ़र्श पर बैठे और जो पेशाब या पखाने की हाजत होवे, तो उससे फ़ारिग़ होकर बैठे। और जगह की इस क़दर अहतियात चाहिये कि अभ्यासी के नज़दीक शोर-ओ-ग़ुल न होवे और कोई ग़ैर आदमी वहाँ मौजूद न रहे,और कोई अभ्यासी को अभ्यास की हालत में न छेड़े। जो ज़रूरत होवे तो दूर से आवाज देवे।

१२—शौक़ीन अभ्यासी को इख़्तियार है कि चाहे जिस वक़्त, खाना खाने से पेश्तर या दो-तीन घन्टे बाद खाना खाने के, चाहे जिस जगह अभ्यास करे, और चाहे जितनी देर दस मिनट से लगा कर एक घन्टे या सवा घन्टे या डेढ़ घन्टे तक, जिस क़दर दिल चाहे, एक मर्तबा अभ्यास करे। और जब दया से उसकी सुरत और मन सिमट कर ऊपर की तरफ़ को चढ़ने लगें तो शुरू में इस क़दर अहतियात रक्खे कि बहुत ज़्यादा और बहुत ऊँचे की तरफ़ उनको न खींचे। आहिस्ता २ जिस क़दर बर-दाश्त होवे, चढ़ाई करे। और जब ऐसा होवे कि ब-सबब ज़्यादा चढ़ाई के, दिल तड़पने लगे, तो जितने दर्जे बरदाश्त होवे अभ्यास जारी रक्खे, और जब ऐसी हालत दिल की बरदाश्त न होवे तो उस वक़्त अभ्यास छोड़ देवे। या जो ख़ुद-ब-ख़ुद खिंचाव ज़्यादा मालूम होता होवे और

उसकी बरदाश्त न कर सके या कुछ तकलीफ़ या ख़ौफ़ मालूम होवे, तो भी उस वक़्त अभ्यास छोड़ कर उठ खड़ा होवे, और फिर थोड़े अर्से बाद अभ्यास करे, ताकि आहिस्ता २ उस हालत को बरदाश्त हो जावे। और बाद अभ्यास के कुछ काम-काज भी करता रहे जिससे बदन और इन्द्रियाँ शिथिल और सुस्त न होने पावें।

१३—जो किसी अभ्यासी का, वक़्त ध्यान या भजन के, कोई हिस्सा बदन का सुन्न यानी सुस्त या बेकार हो जावे तो जानना चाहिये कि उससे अभ्यास दुरुस्त बनता है। ऐसी हालत को देख कर ख़ौफ़ और वहम न करना चाहिये। बाद अभ्यास के, आहिस्तगी के साथ उठ कर दस-पाँच मिनट चिहल-क़दमी करे तो सुस्ती बदन की रफ़ा हो जावेगी।

१४—जब भजन या ध्यान में विशेष रस या आनन्द मिलने से अभ्यासी की तबीअत में मस्ती और बे-परवाही और संसार के भोग-विलास और कर्रवाई की तरफ़ से किसी क़दर नफ़रत पैदा होवे तो लाज़िम है कि ऐसे जोश की हालत में, किसी चीज़ या काम या रोज़गार या कुटुम्ब-परिवार का जल्दी से त्याग न करे और इस जोश को पक्का और ठहराऊ न समझे। थोड़े दिन में आहिस्ता २, यह रस हज़्म हो जावेगा, यानी साधारण हो जावेगा और फिर अपने त्याग वग़ैरा पर पछताना पड़ेगा। इस वास्ते, इस मुआमले

में निहायत अहतियात के साथ बर्ताव करना लाज़िम है। और उस जोश को, जिस क़दर मुमकिन होवे, ज़ब्त करना और दुनियादारों की नज़र से छिपाना मुनासिब है।

१५—और अभ्यासी को ऐसे जोश की हालत में अपने तईं पूरा मानना या अपना सब काम पूरा बन जाना नहीं समझना चाहिये, नहीं तो रास्ता, आइन्दा की तरक़्क़ी का, बन्द हो जावेगा और जो हालत कि पैदा हुई है, वह भी रफ़्ता २ साधारण हो जावेगी और फिर अपनी कसरें मालूम पड़ेंगी और वह समझ (पूरे मानने की) ग़लत हो जावेगी।

१६—अभ्यासी को हर हालत में मुनासिब है कि अपनी कसरों पर नज़र रक्खे और दोनता न छोड़े। और जब तक कि त्रिकुटी और दसवें द्वार में न पहुँचे, तब तक जो कुछ कि हालत मस्ती और बे-परवाही की उस पर गुज़रे और ज़्यादा से ज़्यादा आनन्द प्राप्त होवे, उसको पायदार और मुस्तक़िल न समझे। और दिन २ अभ्यास में तरक़्क़ी करे। और ऊँचे से ऊँची चढ़ाई पर नज़र और इरादा रक्खे। और देह और इन्द्रियों से थोड़ा-बहुत काम-काज करता रहे, जिसमें रूह की धार का चढ़ाव और उतार बराबर जारी रहे और तरक़्क़ी भी होती रहे। इस तरह अहतियात के साथ अभ्यास करने से काम पूरा और दुरुस्त बनेगा

और नहीं तो मस्ती और बे-परवाही ग़ालिब हो जावेगी और दुनिया और देह के काम में बहुत हर्ज वाक़ै होगा। और फिर अभ्यास और उसकी तरक़्क़ी में भी ख़लल पड़ेगा। और वह मस्ती की हालत भी एक-रस क़ायम नहीं रहेगी, और शायद तन्दुरुस्ती में भी किसी न किसी तरह का ख़लल वाक़ै होवे।

१७—वास्ते दुरुस्ती से जारी रहने कार्रवाई अभ्यास के, और ज़ब्त करने जोश मस्ती के, अभ्यासी को मुनासिब है कि संत सतगुरु या साधगुरू या प्रेमी अभ्यासी से, जो अपने से ज़्यादा दरजे का है, मेल करे और उनके सतसंग में वक़्तन-फ़वक़्ततन चंद रोज़ के वास्ते शामिल होना, ज़रूर जारी रक्खे। उनकी सोहबत और बचनों से इसको अपनी हालत की ख़ामी मालूम होती रहेगी और आनन्द और सरूर का नशा, जो इसको वक़्तन-फ़वक़्तन अभ्यास में हासिल होगा, ना-मुनासिब तौर पर बढ़ने नहीं पावेगा। और वे हर तरह से अंतर और बाहर मदद देकर, इस को जल्द-बाज़ी और मस्ती और दूसरे नुक़सान वग़ैरा से बचाते रहेंगे और दिन २ इसको तरक़्क़ी में मदद देंगे।

बचन १०

तरकीब रोकने मन की चाह और तरंगों की, और ज़ब्त करने इन्द्रियों की, और वर्णन फ़ायदा राधास्वामी दयाल की शरन का।

१—जब कि अभ्यास के समय मन और इन्द्रियाँ चंचल रहेंगी तो कुछ रस रहीं आवेगा और न कुछ तरक़्क़ी होवेगी। इस वास्ते वह उपाय कि जिससे मन थोड़ा-बहुत ठहरे, आगे लिखा जाता है।

२—मन के हाल को ग़ौर से विचारने और जाँच करने से मालूम होता है कि यह चार मौक़ों पर थोड़ा-बहुत क़ाबू में आ सक्ता है यानी चंचलता छोड़ कर जहाँ ठहराओ, वहाँ ठहर जाता है—एक, ख़ौफ़ के वक़्त, दूसरे, अपने मतलब के पूरे होने की जगह, तीसरे, इश्क़ और मुहब्बत की जगह, और चौथे, रंज के वक़्त।

पहिले, ख़ौफ़ का बयान

३—जिस वक़्त कि किसी क़िस्म का ख़ौफ़ दिल पर ग़ालिब होता है, उस वक़्त मन और इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं और जिस तरफ़ को कि तवज्जह के साथ उनको लगाओ तो थोड़े-बहुत लग जाते हैं। ख़ास कर भजन और ध्यान में, ऐसे वक़्त, मन और सुरत का सहज में सिमटाव

और ऊपर की तरफ़ चढ़ाई मुमकिन है, क्योंकि इस तरफ़ आस मिलने सहारे की, वास्ते दूर होने ख़ौफ़ या बचाव के, ख़ौफ़ की चीज़ से, रहती है। और ऐसे वक़्त पर जिस क़दर ख़ौफ़ ज़्यादा होता है। उसी क़दर मन और सुरत ज़ोर के साथ अन्तर में लगते हैं। लेकिन हद्द से ज़्यादा ख़ौफ़ की हालत में कोई काम नहीं बन सक्ता और ऐसी हालत दिल पर कभी नहीं आने देना चाहिये।

दूसरे, आशा पूर्ण होने की जगह

४—जिस जगह कि जीव का कुछ काम अटका हुआ है या जहाँ से जिसकी कोई आशा पूर्ण होने वाली है, वहाँ यह मन उमंग और दीनता के साथ कार्रवाई करने को तैयार रहता है और उस शख़्स के प्रसन्न और राज़ी करने को, जिससे या जिसके वसीले से वह मतलब पूरा होना मुमकिन है, कोशिश करता है, और अपनी टेक और आदत और तरंगें, चाहे जिस क़िस्म की होवें, फ़ौरन छोड़ देता है। और जिस तरफ़ वह शख़्स चाहे, उधर को फ़ौरन मुतवज्जह होकर, सर्व अंग से काम करने को तैयार होता है और नीच-ऊँच सेवा और ख़िदमत तन, मन और धन की, ख़ुशी से करता है।

तीसरे, इश्क़ और मुहब्बत की जगह

५—जहाँ इस मन को किसी क़िस्म की मुहब्बत है या किसी के साथ इश्क़ पैदा हो जाता है, वहाँ यह ग़ुलामों

के मुवाफ़िक़ ख़िदमत और हाज़िरी उमंग के साथ करता है, और अपनी सर्व चाहें और तरंगें उसकी ख़ातिर छिन में छोड़ कर अपने माशूक़ की ख़ुशी और रज़ामंदी को मुक़द्दम समझता है, और ज़रा भी अपने नफ़े और नुक़सान और इज़्ज़त और हुरमत का आगा-पीछा नहीं सोचता है, और कुटुम्ब परिवार और बिरादरी वग़ैरा का ख़्याल नहीं करता है, और दुनिया की लज्जा और शर्म और ख़ौफ़ और उम्मेद वग़ैरा को ताक़ पर रख देता है, और जैसे माशूक़ चाहे, वैसे ही बर्तने को हर दम तैयार रहता है।

चौथे, दुक्ख और रंज के वक़्त

६—जब कोई सख़्त सदमा या मुसीबत या रंज वाक़ै होता है, उस वक़्त यह मन सब तरंगें संसारी तरक़्क़ी और इन्द्रियों के भोगों की छोड़ कर उदासीन हो जाता है। और सच्चे वैराग की हालत उस पर ग़ालिब हो जाती है, और निहायत दर्जे की दीनता और ग़रीबी के साथ बर्ताव करता है, और किसी पर ज़ियादती या सख़्ती करना पसन्द नहीं करता है। और आम तौर पर परमार्थ और ख़ास कर मालिक के चरणों की तरफ़ इस की सरधा ऐसे वक़्त में बहुत बढ़ जाती है। और संत और महात्माओं के वचनों को ग़ौर से सुनता और विचारता है और उन पर अमल करने को शौक़ के साथ तैयार होता है। और जो कोई

कड़ुवा या सख़्त वचन कहे, तो उसकी बरदाश्त करता है और उससे बदला लेने का इरादा नहीं करता।

७—जो ज़िक्र मन की हालत का ऊपर लिखा गया, उसका बर्ताव दुनिया में प्रत्यक्ष और ज़ाहिर नज़र आता है और परमार्थ में भी उन चार सूरतों में मन की वैसी ही हालत बल्कि उससे ज़्यादा बदलनी मुमकिन है। उस का ज़िक्र तफ़सील के साथ नीचे लिखा जाता हैं।

अव्वल, परमार्थी ख़ौफ़ का बयान

८—जबकि इस दुनिया और उसके सामान की नाश-मानता सच्चे परमार्थी की नज़र में आई और देह धर कर जो दुख-सुख भोगने में आते हैं, उनका भी हाल उसने ग़ौर से दरियाफ़्त किया और जहाँ २ कि उसकी प्रीति या बंधन है, उसके सबब से भी जो ख़ुशी और तकलीफ़ आयद होती है, उसको भी उसने जाँच कर देखा कि अपनी ही आसक्ति का नतीजा है और फिर अपनी मौत और आइन्दा को ज़बर वासना और संग और स्वभाव के अनुसार बारम्बार जन्म और मरण का विचार करके जो ख़ौफ़ दिल में पैदा हुआ, तो उसके सबब से किसी क़दर शिथिलता और सुस्ती ज़रूर मन में आवेगी। जो हर वक़्त नहीं तो जिस वक़्त कि इन बातों का ख़्याल दिल में आवेगा, उस वक़्त ज़रूर मन की हालत बदलेगी। और

जब कि अपने सच्चे और कुल्ल-मालिक का पता और भेद घट में मालूम हुआ और उसका कुछ जलवा और प्रकाश भी सच्चे गुरू का संग करके नज़र आया, तब उस मालिक और गुरू के हुक्म के मुवाफ़िक़, संसार और परमार्थ में न बर्तने के सबब से, जो ख़ौफ़ मालिक की अप्रसन्नता का दिल में पैदा हुआ, वह सब से बढ़ कर और निर्मल और सच्चा वसीला मन को दुरुस्ती के वास्ते होवेगा। ऐसा ख़ौफ़ सिर्फ़ सच्चे परमार्थियों के दिल में कि जिन को हरदम कुल्ल-मालिक और गुरू की प्रसन्नता का ख़्याल रहता है, पैदा होगा, और वेही इसके सबब से बुरे कामों से बचेंगे।

९—यह सब ख़ौफ़ मन की गढ़त और उसकी दुरुस्ती के वास्ते और अभ्यास के समय उसको शब्द और स्वरूप में स्थिर करने के लिये और भोगों से बचते रहने के लिये, बड़ी भारी मदद देते हैं। इस वास्ते हर एक परमार्थी को चाहिये कि इन में से कोई न कोई ख़ौफ़ दिल में पैदा करके, संसार से अपना बचाव (जिस क़दर मुनासिब और ज़रूरी होवे) करता रहे और अंतर अभ्यास और बाहर सतसंग और सेवा, विरह अंग लेकर, दुरुस्ती से करता रहे।

१०—और जब कभी दुनिया का ख़ौफ़, किसी क़िस्म का, दिल में पैदा होता है, उस वक़्त भी अभ्यासी के मन

और सुरत किसी क़दर निश्चल होकर अभ्यास में जुड़ जाते हैं और अंतर में किसी क़दर शान्ति और तसल्ली उनको हासिल हो जाती है।

दूसरे, बयान आस का, वास्ते पूरे होने मतलब के

११—जो कि सच्चे परमार्थी के मन में सब से बढ़ कर एक आशा अपने मालिक से उसके निज धाम में पहुँच कर मिलने की ज़बर होगी और वह आशा बग़ैर दया और मेहर और बख़्शिश कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु के पूरी होनी ना-मुमकिन है, और कुल्ल-मालिक और संत सतगुरु की दया उस वक़्त हासिल होगी कि जब वे सेवक की सेवा और दीनता और प्रेम और आज्ञाकारी होने से राज़ी और प्रसन्न होवें, इस वास्ते वह सेवक वास्ते प्राप्ति दर्शन और निज धाम के, ज़रूर ख़ुशी और उमंग के साथ उन अंगों में बर्तना शुरू करेगा कि जिससे राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु की प्रसन्नता और दया हासिल होवे। और उस बर्ताव में उसको किसी तरह की दिक़्क़त और तकलीफ़ न होगी। बल्कि उस का मन उन अंगों में जिस क़दर मुमकिन होगा, बर्त कर राज़ी होगा और कोई अंग में न बर्तने से या भूल-चूक हो जाने से निहायत दुखी होकर पछतावेगा, और मुआफ़ी के वास्ते प्रार्थना करेगा

और आइन्दा को ज़्यादा होशियारी और एहतियात के साथ काम करेगा।

१२—इस वास्ते हर एक सच्चे परमार्थी को दर्शनों की चाह और निज धाम में पहुँचने की आशा ख़ूब मज़बूत करके, वास्ते प्राप्ति मेहर और दया और प्रसन्न करने कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु के, जिस क़दर बन सके जतन करना चाहिये, और जब २ भूल-चूक हो जावे तब २ अपने मन में शरमाना और पछताना और चरणों में प्रार्थना करना चाहिये।

तीसरे, बयान प्रेम और इश्क़ का राधास्वामी दयाल के चरणों में

१३—जब कि सच्चे परमार्थी को सतसंग करके साबित हो गया कि कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु ही सच्चे और पूरे हितकारी जीव के हैं, और निज रूप से हर दम और हर वक़्त इसके संग हैं और वे ही रचना भर में सबसे बड़े और समर्थ पुरुष हैं, और उनका धाम जो ऊँचे से ऊँचा और सबके परे है, अमर-अजर और परम आनन्द का स्थान है और वहीं से सुरत आदि में उतर कर आई और सिवाय कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु के, और कोई, जीव के बंधनों को आहिस्ता २ काट कर, और उसको माया और

काल के जाल से निकाल कर, उस निज घर में पहुँचाने वाला नहीं है, तब उस सच्चे परमार्थी के दिल में ज़रूर प्रीति और प्रतीत राधास्वामी और संत सतगुरु के चरणों में आवेगी। और जिस क़दर कि उनकी दया से अभ्यास करके इसकी चाल चलती जावेगी और अंतर में दया और मेहर के परचे मिलते जावेंगे, उसी क़दर प्रीति-प्रतीत बढ़ती जावेगी, यहाँ तक कि दुनिया भर में उसको राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु से ज़्यादा या उनके बराबर कोई प्यारा नहीं लगेगा। और जिस क़दर प्रेम उसका शुरू से बढ़ता जावेगा, उसी क़दर वह तन-मन-धन की सेवा, ज़्यादा से ज़्यादा, करता जावेगा, और जान-प्राण तक उन पर नौछावर करने को तैयार रहेगा और किसी क़िस्म की सेवा करने और भक्ति के अंगों में बर्तने में उसको झिझक या लिहाज़ या शर्म या डर या सोच या विचार आगे-पीछे का नहीं रहेगा और उनकी आज्ञा में बर्तने को अपना बड़ा भाग समझेगा।

१४—इस वास्ते हर एक परमार्थी को राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु के चरणों में प्रीति और प्रतीत लाना और अंतर और बाहर सतसंग जारी रख कर उसका दिन २ बढ़ाना मुनासिब और लाज़िम है कि जिससे उस पर दिन २ दया और मेहर की बख़्शिश ज़्यादा से

ज़्यादा होती जावे और सेवा और भजन और आज्ञा में बर्तना उस को सहज और आसान हो जावे।

चोथे, दुक्ख और रंज यानी तीन तापों में गिरफ़्तारी

१५—इस दुनिया में कोई जीव ऐसा नहीं है कि जो किसी न किसी क़िस्म के दुःख में, किसी न किसी वक़्त, गिरफ़्तार न होवे यानी तीन ताप का चक्कर हमेशा चलता रहता है और सब जीव रोग-सोग और उपाधि के झटके सहते रहते हैं।

१६—दुनियादार ऐसे दुक्खों के वक़्त रोते और चिल्लाते और बिल्लाते हैं और पुकारते हैं, मगर कुछ सुनवाई नहीं होती। लेकिन परमार्थी जीव ऐसी तकलीफ़ों के वक़्त, अपने कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल के चरणों की तरफ़, अपने घट में, दौड़ते हैं यानी उस वक़्त सुमिरन, ध्यान और भजन ज़ोर देकर करते हैं कि जिस से उन को थोड़ा-बहुत, दया से, सहारा मिलता है। और ऐसे वक़्त में जो कि मन उनका दुनिया और उसके समान और भोगों की तरफ़ से सच्चा उदास होता है और मामूली चंचलता छोड़ देता है यानी किसी क़िस्म की तरंगें और ख़्याल और गुनावन वग़ैरा नहीं उठाता है, इस सबब से वे ज़्यादा आसानी के साथ अंतर अभ्यास में लग जाते हैं, और उस तकलीफ़ से दूर

होने या हलके होने या न व्यापने या कम व्यापने की नज़र से, ज़्यादा विरह के साथ उनके मन और सुरत नाम और रूप और शब्द में जुड़ जाते हैं। और उनको फ़ौरन उसका नतीजा यानी दया और मेहर और रक्षा और सम्हाल अपने घट में मालूम होती है।

१७—इस वास्ते कुल्ल परमार्थियों को मुनासिब और लाज़िम है कि जिस क़दर बन सके,तकलीफ़ के वक़्त थोड़ा-बहुत अंतर अभ्यास करें, बैठे २ या लेटे २, और जो मामूली तौर से न बन सके तो अपने चित्त को सहज तौर से चरणों में जोड़ते रहें, तो ज़रूर कुछ न कुछ मदद मिलेगी यानी अंतर में दया का सहारा और ताक़त पावेंगे। और ऐसी हालत में हमेशा यह ख़्याल रखना चाहिये कि जो कुछ होता है वह अपने मालिक राधास्वामी दयाल की मौज से होता है और वे उसमें हमेशा अपने बच्चों की रक्षा और सम्हाल करते हैं और उनके दुखदाई कर्मों के फल को बहुत हलका कर देते हैं और उसी में उनके मन की गढ़त और सफ़ाई भी करते हैं। और जो इस तरह मौज से तकलीफ़ आवे, उसमें ज़्यादा घबराना या निराश नहीं होना चाहिये, बल्कि धीरज के साथ राधास्वामी दयाल की दया का बल लेकर उसको सहना चाहिये, और जहाँ तक मुमकिन हो, मौज के साथ, बग़ैर शिकवा और शिकायत के

मुवाफ़क़त करना मुनासिब है। और जब दिल चाहे,प्रार्थना करे और दया और मेहर माँगे। लेकिन जो प्रगट दया होती हुई न मालूम पड़े यानी तकलीफ़ किसी क़दर न घटे, तो भी उसको ऐसी ही मौज समझ कर, जहाँ तक बने,बरदाश्त करने को तैयार होवे, तो ज़रूर वे दया से थोड़ी-बहुत ताक़त बरदाश्त की बख़्शेंगे। और जो मौज कम करने या घटाने तकलीफ़ की नहीं होगी, तो भी थोड़ी-बहुत उसकी मसलहत अपने सेवक को जता कर सहारा देंगे, क्योंकि बाज़े कर्म इसी तरह काटे जाते हैं और उसमें मतलब यह है कि अभ्यासी भक़्त की मौज से जल्द सफ़ाई हो जावे और कोई कर्म उसको चरणों में पहुँचने और वहाँ बासा पाने से न अटकावे। इस वचन से यह न समझना चाहिये कि तकलीफ़ या बीमारी के वक़्त, निरा-निरी अभ्यास के आसरे रहे, नहीं, ज़ाहिरी तदबीर मिस्ल दवा वग़ैरा के दस्तूर के मुवाफ़िक़ ज़रूर करना चाहिये और दया का आसरा और भरोसा वास्ते कामयाबी उस तदबीर या दवा के मन में रखना चाहिये, क्योंकि दवा का असर, मुनासिब और और मुवाफ़िक़ दया से होगा। और जो भक़्त के किसी कुटुम्बी या रिश्तेदार को कोई तकलीफ़, या मुसीबत आयद होवे, तो उस भक़्त की भक्ति के सबब से, बहुत सहायता उस कुटुम्बी की हो जावेगी। मगर जैसे कि उसके कर्म हैं, उनका भोग,

दया और सहायता के साथ। उनको ज़रूर भोगना पड़ेगा, क्योंकि कर्मों का लेख, जैसा कुछ कि है, मिट नहीं सक्ता है, पर दया से हलका हो जाता है या परमार्थी भाव में बदल दिया जाता है।

१८—मन की हालत और कोई २ ख़वास उसके ऐसे हैं कि बग़ैर थोड़ी-बहुत तकलीफ़ पाये, उनकी गढ़त और दुरुस्ती मुमकिन नहीं है। यानी इसका संसार में बंधन और झुकाव ऐसा ज़बर है कि जब तक अपने प्यारे जीवों और भोगों और पदार्थों से यह किसी क़दर तकलीफ़ या दुख न पावे, तब तक उनकी तरफ़ से मुख नहीं मोड़ता। इस वास्ते जब इसको किसी क़दर छुड़ाना, और उन भोगों से हटाना मुनासिब और ज़रूरी मालूम होता है, और बचनों की समझ-बूझ लेकर यह उनसे जैसा चाहिये वैसा नहीं हटता है, तब मौज से इसको उन मुआमलों में, किसी न किसी क़िस्म की तकलीफ़ या रंज या झगड़ा या तकरार वग़ैरा पैदा करके हटाया और बचाया जाता है।

१९—ऐसी तकलीफ़ें या झगड़े, जब २ पेश होवें, उनको मसलहत वास्ते परमार्थी फ़ायदे के, समझ कर, सच्चे परमार्थियों को ऐसी मौज के साथ मुवाफ़क़त करना चाहिये।

२०—सिवाय इन चार सूरतों के, पाँचवी जुगत वास्ते दुरुस्ती और सम्हाल मन के, और दूर करने उसके

विकारों के, यह है कि यह शख़्स औरों में औगुण और विकार के अंग देख कर और उनको बुरा समझ कर अपने हाल की तरफ़ नज़र करे कि आया वही औगुन और विकार मेरे में भी हैं या नहीं, और जो हैं तो वे और लोगों को ऐसे ही बुरे मालूम होते होंगे जैसे कि औरों के औगुण मुझ को बुरे मालूम होते हैं। फिर औरों को नसीहत करने या उनके औगुणों की बुराई करने से पहिले मुझको लाज़िम और मुनासिब है कि अपने औगुणों और विकारों को दूर करूँ। और इस तरह यह शख़्स आहिस्ता २ औरों के औगुण देख कर अपनी सफ़ाई करे, तौ कुछ अर्से की ऐसी कार्रवाई से बहुत-कुछ दुरुस्ती और सम्हाल मन की मुमकिन है। और अपने मन के हाल पर नज़र करने में इस क़दर एहतियात चाहिये कि सब तरह के विकारों और औगुणों पर, चाहे वे संसार में नुक़सान करने वाले होवें या परमार्थी कार्रवाई में विघ्न डालने वाले होवें, ग़ौर से नज़र करे और उनके दूर करने में जहाँ तक बन सके राधास्वामी दयाल की दया का बल लेकर कोशिश करे।

२१—ईश्वर का भी वाक्य है कि मैं वास्ते दुरुस्ती और बचाव और सम्हाल अपने भक्तों के, उनको तीन चीज़ें देता हूँ—पहिले, थोड़ा रोग, दूसरे, संसारियों में किसी क़दर निरादर, तीसरे, किसी क़दर निरधनता यानी वाफ़ी और काफ़ी धन न का होना।

पहिले, रोग का फ़ायदा

२२—थोड़ी बहुत बीमारी के रहने से मन कमज़ोर रहेगा और ज़्यादा भोग-विलास में नहीं बर्तेगा और अहंकार मन में कम आवेगा, और दूसरे पर सख़्ती कम करेगा और मौत का ख़्याल जब-तब आता रहेगा और शरीर बहुत पुष्ट न होगा कि जिससे भजन में हर्ज पैदा होवे।

दूसरे, निरादर का फ़ायदा

२३—जब संसारी और बिरादरी के लोग तान और निंदा और हँसी करेंगे और भक्त को नादान समझ कर उसका निरादर करेंगे, तो उसका दिल उनकी तरफ़ से ख़ुद-ब-ख़ुद और सहज में हट जावेगा और मेल बहुत कम होवेगा। इस तरह सहज में संसारियों के साथ मुहब्बत और नशिस्त-बरख़ास्त और बात-चीत बहुत कम हो जावेगी और उनका संसारी असर भक्त के दिल को नुक़सान नहीं पहुँचावेगा।

तीसरे, निरधनता का फ़ायदा

२४—जब कि धन की आमदनी सिर्फ़ गुज़ारे के लायक़ होगी और भक्त के पास जमा नहीं होगा, तो उसका मन, ज़रूरत के वक़्त, हमेशा मालिक की तरफ़ रुजू होगा और दया और मदद माँगेगा, और धन का भरोसा और

अहंकार नहीं करेगा और भोगों में भी कम बर्तेगा, क्योंकि जिस चीज़ और दिखावे के सामान को उसका मन चाहेगा, उसको ब-सबब काफ़ी न होने धन के, ख़रीद नहीं सकेगा और इस तरह निभाना रहेगा।

२५—परमार्थियों को समझना चाहिये कि मुसीबत और तकलीफ़ एक क़िस्म की कसौटी है। इसमें अपने मन के हाल की, और भी प्रीति और प्रतीत अपने इष्ट की, ख़ूब जाँच होती है और अपनी कसरों को मालूम करके उनके दूर करने का मौक़ा मिलता है। यह ज़रूर नहीं है कि भक्तों पर हमेशा तकलीफ और मुसीबत की ऐसी हालत गुज़रती रहे, लेकिन कभी २ इसका आयद होना, वास्ते तरक़्क़ी उनके परमार्थ और दूर करने कसरों के, मुनासिब और ज़रूर है। और इसकी मसलहत और ज़रूरत कुल्ल मालिक राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु ख़ूब जानते हैं। ख़ास मतलब उनका यही है कि अपने प्यारे भक्त को सब तरह से निर्मल और साफ़ करके, और अपने चरणों की प्रीति और प्रतीत बढ़ा कर अपने जिन धाम में बासा देवें और काल और माया के जाल और कर्मों के कष्ट और क्लेशों से छुड़ा कर पूर्ण और अमर आनन्द बख़्शें।

२६—मालूम होवे कि जब तक मन में संसार और संसारी लोग और माया और उसके भोगों का भाव और

प्यार है, तब तक जीव काल का क़र्ज़दार है और वह आसा धर कर कर्म करने से बाज़ नहीं रहेगा और फिर उस कर्म का फल, दुख-सुख भी ज़रूर भोगेगा। इस वास्ते, राधास्वामी दयाल और संत सतगुरु की नज़र यही रहती है कि सिवाय ज़रूरी कार्रवाई के, फ़िज़ूल ख़्वाहिशें और तरंगें, वास्ते तरक़्क़ी और विस्तार जगत के व्यवहार और भोग विलास के, अपने भक्त के हृदय से जिस क़दर मुमकिन होवे, दूर कर दें, ताकि निज घर के पहुँचने के जतन और साधन में कोई संसारी बंधन और ख़्वाहिश उसको रास्ते में न अटकावे।

राधास्वामी दयाल की दया और उनकी शरन का फ़ायदा

२७—यह सब तदबीरें और जतन और हालतें जिनका ऊपर बयान हुआ, वास्ते थोड़ी-बहुत दुरुस्ती और गढ़त मन के, मुफ़ीद हैं और हर एक सच्चे परमार्थी को उनका ख़्याल अपने परमार्थी बर्ताव में रखना ज़रूर चाहिये। लेकिन बग़ैर दया और मेहर राधास्वामी दयाल के, इन में पूरी कामियाबी होनी मुश्किल है। और यह दया उस वक़्त हासिल होगी, जब प्रेमी भक्त राधास्वामी दयाल को कुल्ल-मालिक और सर्व समर्थ समझ कर, उनकी सच्चे मन से शरन लेवेगा और सर्व बल और आसरे और अहंकार

छोड़ कर, राधास्वामी दयाल की दया का भरोसा मन में रखकर, अपने परमार्थ और स्वार्थ की कार्रवाई, जहाँ तक मुमकिन होवे, उनकी मौज और हुक्म के मुवाफ़िक़ शुरू करेगा।

२८—शरन का स्वरूप यह है कि जैसे तीन-चार वर्ष का बालक अपनी माता के आसरे रहता है और दुख-सुख के वक़्त उसी की गोद की तरफ़ दौड़ता है, और जैसे माता रक्खे, उसी में राज़ी रहता है, और हरचंद कि खेल-कूद में भी और लड़कों के साथ शामिल होता है, पर थोड़ी २ देर बाद माता की याद करके उसके पास जाता है, और उसके दूध और दर्शन और प्यार का आधार रखता है, ऐसे ही प्रेमी भक्त राधास्वामी दयाल के चरण-रस का आधार रखता है, यानी जब तब ध्यान और भजन करके, अन्तर में थोड़ा-बहुत रस लेता रहता है और अबल बालक की तरह, सर्व अङ्ग करके, परमार्थ और स्वार्थ में उन्हीं की दया और सम्हाल का भरोसा रखता है।

२९—ऐसे भक्त पर राधास्वामी दयाल ज़रूर दया करते हैं और उसके सब कामों की, और भी मन और इन्द्रियों की, हर तरह से सम्हाल फ़रमाते हैं, और जब वह किसी काम में भूलता है या चूकता है और उसके बाद अपने मन में झुरता और शरमाता है और पछताता है और

वास्ते माफ़ी के, प्रार्थना करता है, तब वे फ़ौरन उसकी भूल-चूक माफ़ फ़रमाते हैं। ऐसे भक्त के मन में हमेशा ऐसी समझ और प्रतीत रहती है कि जो कुछ उसकी निसबत होता है, वह राधास्वामी दयाल की मौज से होता है और वह मौज चाहे जैसी होवे, दया और मसलहत से ख़ाली नहीं है यानी उसमें किसी न किसी क़िस्म का फ़ायदा उसका, चाहे वह जल्द मालूम पड़े या ब-देर, ज़रूर होगा। और जो किसी हालत में उसको बेचैनी या घबराहट होती भी है, तो वह उस वक़्त सहायता के वास्ते राधास्वामी दयाल के चरणों की तरफ़ दौड़ता है यानी अन्तर में अपने मन और सुरत को चरणों में जोड़ता है, और थोड़ा-बहुत रस और सहारा लेकर किसी क़दर शान्ति ज़रूर हासिल करता है।

३०—इस वास्ते कुल्ल सच्चे परमार्थियों को मुनासिब और लाज़िम है कि कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल को अपना सच्चा माता और पिता और रक्षक और हितकारी समझ कर, सच्चे मन से उनके चरणों की शरण लेवें और जितने काम परमार्थी और स्वार्थी हैं, उनमें मुनासिब तदबीर और जतन, जैसा कि हुक्म है या जैसा कि दस्तूर है, करते रहें, पर उनके फल की निसबत दया और मेहर का आसरा और भरोसा रख कर, जैसी मौज हो, उसको मंज़ूर

करें, यानी उनके साथ मुआफ़क़त करें। और जिस क़दर कि अपने से बन सके, ख़ास कर परमार्थी कामों में, मेहनत और कोशिश करते रहें और हर वक़्त दया और रक्षा और सम्हाल माँगते रहें, तो उनका काम सहज में आहिस्ता २ दुरुस्त बनता जावेगा और मन और इन्द्रिय भी रफ़्ते २ क़ाबू में आते जावेंगे। और वास्ते परख दया और मेहर के, थोड़ा-बहुत नित्त अभ्यास अंतर में करना मुनासिब है और मन की चाल की भी निरख-परख यानी निगरानी रखना ज़रूर है, ताकि उसकी हालत की ख़बर पड़ती रहे। और क़ायदे और हुक्म के मुवाफ़िक़ जिस क़दर दुरुस्ती उसकी मुमकिन है, करते रहें और जो कुछ कि अपनी ताक़त से न बन सके, उसकी दुरुस्ती मौज के हवाले करके दया के उम्मेदवार रहें।

बचन ११

नित अभ्यास करना चाहिये और जिसमें रस ज़्यादा आवे, वही काम ज़्यादा करे, और हर हाल में दया और मेहर का भरोसा रक्खे।

१—राधास्वामी मत के अभ्यासियों को चाहिये कि भजन और ध्यान और धुन के साथ सुमिरन, जिस क़दर बन सके, करें, और इनमें से जिस अभ्यास में मन ज़्यादा

रुजू होवे, उसी को ज़्यादा देर तक करें, और जिसमें मन कम लगे, उसको कम करें।

२—जो भजन में ज़्यादा मन लगे और सुमिरन और ध्यान की तरफ़ तवज्जह कम होवे, तो भजन ज़्यादा करें और जो दिल चाहे तो थोड़ा ध्यान भी किसी वक़्त करे।

३—और नाम का सुमिरन धुन के साथ उस वक़्त करें कि जब मन, भजन और ध्यान में न लगे, नहीं तो कुछ ज़रूर नहीं है। जब दिल चाहे, तब थोड़ा या बहुत करें।

४—लेकिन जो सतसंग प्राप्त नहीं होवे तो थोड़ा पाठ बानी और बचन का, समझ २ कर नियम के साथ हर रोज़ करें। यह किसी क़दर सतसंग का फायदा देगा और इससे होशियारी और लगन जागती रहेगी।

५—जो थोड़ी-बहुत खटक अपने जीव के कल्याण की दिल में रही आवेगी और थोड़ा-बहुत अभ्यास और पाठ नियम के साथ जारी रहेगा, तो राधास्वामी दयाल, जब जब और जिस तरह मुनासिब समझेंगे, ज़रूर उस अभ्यासी पर दया फ़रमाते रहेंगे और अभ्यास में तरक़्क़ी भी बख़्शते रहेंगे। इस तरह, एक दिन ज़रूर जीव का कारज बन जावेगा।

६—जब कभी अभ्यास में रस और आनन्द न आवे, तो समझना चाहिये कि किसी ओछे कर्म का चक्कर है। ऐसे वक़्त में मुनासिब तो यह है कि ज़ोर देकर, मुवाफ़िक़

मामूल, अभ्यास करे, चाहे रस आवे या नहीं, और जो ऐसा न बन सके तो अभ्यास थोड़ा करे और उस रोज़ तवज्जह के साथ पाठ ज़्यादा करे और ख़ास कर चितावनी और प्रेम और चढ़ाई के शब्दों को पढ़े।

७—ऐसी हालत में ज़्यादा घबराना या निराश नहीं होना चाहिये, बल्कि ओछे कर्म के चक्कर को जल्द काटने के लिए कुछ परमार्थी कार्रवाई, जो बन सके, तो मामूल से थोड़ी ज़्यादा करनी चाहिये।

८—हर हाल में मेहर और दया का भरोसा रखना चाहिये। जब कि दुनिया में कोई शख़्स किसी की मेहनत और हाज़िरबाशी का एवज़ाना नहीं रखता है तो कुल्ल-मालिक राधास्वामी दयाल अपने भक्त की सेवा किस तरह ख़ाली रक्खेंगे ?

९—कभी २ अभ्यास का रस न मिलने में भी कुछ मसलहत है, यानी जो कोई दिन कुछ रस नहीं मिला या कम मिला तो आगे ज़्यादा मिलने की उम्मेद है या कोई दूसरा फ़ायदा, जैसे मन की गढ़त, और समझ-बूझ और प्रीति और प्रतीत पक्की करना और बढ़ाना वग़ैरा २ मुतसव्वर है।

१०—इस वास्ते, घबरा कर या निराश होकर अभ्यास को छोड़ना नहीं चाहिए और न राधास्वामी दयाल की

तरफ़ से बे-प्रतीत होना चाहिए, बल्कि अपने मन और इन्द्रियों के हाल और चाल पर ग़ौर से नज़र करना चाहिये कि कुछ न कुछ उसकी कसर के सबब से अभ्यास का रस नहीं मिला। और उस कसर के दूर करने का जतन, दया का बल लेकर करना चाहिये ताकि विघ्न जल्दी दूर हो जावें और आइन्दा को ख़लल न डालें।

११—और अभ्यासी को मुनासिब है कि जो कोई सतसंगी अपने से ज़्यादा दर्जे और ज़्यादा तजरुबे का होवे, उससे हाल अपना कह कर सलाह और मदद लेवे। उससे भी कुछ फ़ायदा होगा और तबीयत को ताक़त आवेगी।

१२—अभ्यासी को इस क़दर एहतियात ज़रूर चाहिये कि भोगों की चाह और तरंग कम उठावे और उनमें ज़रूरत के मुताबिक बर्ताव करे, क्योंकि जो इन्द्रियों के भोग में ज़्यादती के साथ बर्ताव रहेगा तो भजन में मन कम लगेगा और रस कम आवेगा।

१३—इस वास्ते अभ्यासी सतसंगी को चाहिये कि जब-तब चितावनी और वैराग और भक्ति और प्रेम के शब्दों का पाठ करता रहे, और जब मन बे-फ़ायदा और फ़िज़ूल तरंगें उठावे, तब उनको, जहाँ तक मुमकिन होवे, रोके और हटावे और मन में शरमावे और पछतावे और प्रार्थना करे। आहिस्ता २ हालत बदलेगी।

१४—इस काम में जल्दी करना मुनासिब नहीं है, क्योंकि यह मन जुगान-जुग और जन्मान-जन्म से भूला हुआ और भरमा हुआ है और शुरू से इसका झुकाव संसार और भोगों की तरफ़ हो रहा है। सो आहिस्ते २ इसका स्वभाव बदलेगा और अन्तर में मुख मुड़ेगा। दया राधास्वामी दयाल की शामिल-ए-हाल है। लेकिन वह भी आहिस्ता २ कार्रवाई करेगी, क्योंकि एक दम हालत बदलने में पूरा और ठहराऊ फ़ायदा नहीं होगा।

१५—और सतसंगी अभ्यासी को यह भी ख़्याल रखना चाहिये कि राधास्वामी मत का मतलब मन और सुरत के समेटने और चढ़ाने का है। सो जिस तरह यह काम आसानी से हो सके (यानी जिस अभ्यास में मन ज़्यादा लगे) वही जतन करना चाहिये। और दिल में शौक़ देखने रोशनी और चमत्कारों का या हासिल होने सिद्धि और शक्ति का नहीं रखना चाहिये, क्योंकि जो इस क़िस्म की आशा मन में रही तो अभ्यास में निर्मल रस नहीं आवेगा। इस वास्ते मुनासिब है कि भजन के वक़्त शब्द की तरफ़, और ध्यान के वक़्त स्वरूप और मुक़ाम की तरफ़ (चाहे कुछ नज़र आवे या नहीं) तवज्जह रक्खे और गुनावन किसी क़िस्म की न उठावे, तो थोड़ा-बहुत रस मन और चित्त के एकाग्र होने से ज़रूर मिलेगा। और इसी का

नाम निर्मल रस है। और जब मौज से रोशनी वग़ैरा या कोई और कैफ़ियत नज़र आवे तो उसको देखे, मगर मन अपना उस में न बाँधे और न ख़्वाहिश इस बात की रक्खे कि बार २ वही रोशनी या कैफ़ियत नज़र आवे, नहीं तो शब्द और स्वरूप और मुक़ाम की तरफ़ से तवज्जह किसी क़दर हट जावेगी और मन रूखा और फीका हो जावेगा और अभ्यास में जैसा चाहिये, नहीं लगेगा। और ऐसा ख़्याल दिल में पैदा होगा कि हम को कुछ हासिल नहीं हुआ या हमारी तरक़्क़ी नहीं होती है या कि हम पर कुछ दया नहीं है और फिर अनेक तरह की गुनावनें भी पैदा होकर मन को अभ्यास की तरफ़ से ढीला कर देंगी।

बचन १२

वर्णन सत्त पद के सच्चे खोजी का, और यह कि वह सत्त पद असत्त यानी माया देश के परे है, और उसके मिलने का रास्ता घट में है, और इस रचना में उस सत्त की सिर्फ़ किरणें आई हैं और उन्हीं की सत्ता से यहाँ की कुल्ल कार्रवाई हो रही है।

१—सत्त पद का सच्चा खोजी वह है कि जिसको सच्ची चाह इस बात की है कि सत्त वस्तु को तहक़ीक़ करे

कि वह क्या है और कहाँ है और कैसे मिले। और इस खोज करने में जब उसका सही पता लग जावे, तो उस सत्य वस्तु के हासिल करने में किसी तरह की उसके मन में अटक या लज्जा और शर्म और ख़ौफ़ न रहे और न किसी तरह की किसी में उसकी टेक या पक्ष होवे। और न यह इरादा होवे कि जो कोई बात उसने पहिले सुनी और पढ़ी है या समझी है या अपनी विद्या और बुद्धि से विचारी है, उसके साथ जहाँ तक बने, मेल मिलावे। और नई सही तहक़ीक़ात होने पर किसी तरह का अफ़सोस या मन की हठ या सुस्ती पिछली समझ या विचार के छोड़ने में न करे। यानी सत्य वस्तु के मालूम होने पर ख़ुश होकर उसको फ़ौरन ग्रहण करे और उसके हासिल करने में किसी तरह का पस-ओ-पेश न करे और अपनी पिछली समझ और विचार के ग़लत साबित होने पर, सुस्त और उदास होकर ऐसा कह कर कि असल सत्य वस्तु की प्राप्ति का जो जतन बताया गया है, वह महा कठिन है, हट न जावे।

२—जो कोई कि तहक़ीक़ात की हालत में किसी के धमकाने या डराने या फुसलाने से हट जावे या अपनी बात रखने को फ़िज़ूल बातें बना कर के खोज के जारी रखने की निसबत उज़रात पेश करे, या किसी क़दर अपनी ओछी समझ-बूझ की पक्ष करके साफ़ अक़्ल के साथ बचन न सुने

और न समझना चाहे या कोई ओछी दलील पेश करके सरीह सच्ची बात को न माने और न क़ुबूल करे या सच्ची वस्तु के लखाने वाले और उसके संगियों में औगुण देखे या उनकी चाल-ढाल पर बे-समझे-बूझे (संसारी की अक़्ल के मुवाफ़िक़) एतराज़ करे, तो जानना चाहिये कि वह सच्चा खोजी नहीं है। और फिर ऐसे शख़्स से, सत्य वस्तु के लखाव और उसकी प्राप्ति की जुगत वग़ैरा से बाबत बात-चीत करनी ना-मुनासिब होगी, क्योंकि ऊपर की बातों से साफ़ मालूम हो जावेगा कि उसका इरादा सत्य वस्तु के ग्रहण करने का नहीं है।

३—जो कोई तहक़ीक़ात पूरी करके क़ायल हो जावे और ऐसा कहे कि हक़ीक़त में सत्त वस्तु जो लखाई गई है, सही है, और उसकी प्राप्ति की जुगत और जतन भी सही है, लेकिन मैं फ़लाँ २ आदत और स्वभाव या खान-पान या फलाँ चाल-ढ़ाल को, जिनका छोड़ना वास्ते प्राप्ति उस सत्य वस्तु के ज़रूर है, नहीं छोड़ सक्ता, तो भी उस का नाम सच्चा और पूरा खोजी और दर्दी नहीं हो सक्ता, और इस वास्ते उससे भेद की बातें कहना मुनासिब न होगा।

४—अब समझना चाहिये कि सत्य वस्तु वह है कि जो स्वतन्त्र और आप ही आप है और किसी तरह किसी के आधीन नहीं है, और सदा एक-रस और एक-हाल पर है, और कभी उस में कुछ अदल-बदल नहीं होता, और जो

महा प्रेम और महा आनन्द और महा चैतन्य और महा ज्ञान स्वरूप है, और जो कुछ कि जहाँ-तहाँ सिवाय उसके है या नज़र आता है, वह सब उसके आधीन है और उसी की सत्ता से क़ायम है।

५—अब ग़ौर करो कि इस लोक में जो कुछ कि नज़र आता है, वह सदा एक-रस क़ायम नहीं रहता, यानी नाशमान है। लेकिन जितने अर्से तक कि यहाँ की हर क़िस्म की रचना ठहरी हुई नज़र आती है, वह उसी सत्य की सत्ता से क़ायम है यानी वह सत्ता किरण रूप अथवा सुरत स्वरूप से यहाँ हर एक देह में मौजूद होकर कुल्ल कार्रवाई उसकी अपनी शक्ति से करती है और जब वह सत्ता खिंच जाती है, यानी देह से उसका वियोग हो जाता है, तो उस देह का अभाव हो जाता है।

६—इस सत्ता यानी सुरत में थोड़ी-बहुत वही ताक़त और शक्ति है जो कि उसके भंडार यानी कुल्ल-मालिक में है। और वही सच्चा सत्य-पद है और यह सुरत उसकी अंश यानी किरण है। यह हाल हर एक चीज़ यानी दरख़्त और जानदार के बीज से, जिस वक़्त कि प्रथम धार उसमें से निकलती यानी कुला फूटता है और सुरत अपना ज़हूर करती है, साफ़ ज़ाहिर होता है कि उसी वक़्त से जितनी शक्तियाँ क़ुदरत की हैं, जैसे पाँच तत्त्व और तीन गुण

और रोशनी और बिजली की शक्ति और खैंच-शक्ति और हटाव-शक्ति और बनाव-शक्ति और संहार-शक्ति वग़ैरा हाज़िर होकर उस सुरत की ताबेदारी में रल-मिल कर उसकी देह के बनाव और बढ़ाव और सम्हाल में मदद देती हैं। और जब वह सुरत देह को छाड़ती है तब यही शक्तियाँ आपस में लड़-भिड़ कर, उस देह के स्वरूप को बिगाड़ देती हैं। इससे सुरत की हुकूमत कुल्ल क़ुदरत की शक्तियों पर जो इस रचना में काम दे रही हैं, ज़ाहिर है।

७—ऊपर के बयान से ज़ाहिर है कि वह सत्तपद इस रचना में किरण यानी सुरत स्वरूप है। और वह हर एक देह में चाहे वह ज़मीनी है, या आसमानी, मौजूद है, और कुल्ल कार्र-वाई उस देह की बल्कि और देहियों की, जो उसके मुतालिक़ यानी आधीन हैं, अपनी ताक़त से कर रहा है। इस लिए जो कोई उस सत्त का खोज करना चाहता है और उससे मिलने की चाह रखता है तो वह पहिले अपने सुरत स्वरूप का खोज करे और उससे मिल कर फिर उसके भंडार का पता लगा कर, उससे मिले। और यह पता और खोज अपने घट में लग सक़ा है, बाहर खोज इसका नहीं चल सक़ा और न कभी बाहर जतन करने से उस सत्त पद से मेला होगा।

८—ज़ाहिर है कि जब तक सुरत का ताल्लुक़ यानी बंधन देही या और जानदारों और पदार्थों के साथ, जो कि

नाशमान हैं और हमेशा उनकी हालत बदलती रहती है, रहेगा, तब तक उसको सच्चा यानी अमर सुख प्राप्त नहीं हो सक्ता और दुख और क्लेश वग़ैरा से सच्ची निवृत्ति नहीं हो सक्ती। इस वास्ते जो कोई अमर आनन्द और सत्त पद की प्राप्ति चाहता है, उसको लाज़िम है कि सुरत की धार को (जो शब्द की धार है) पकड़ कर अपने घट में उल्टा चले, तो पहिले उसको सुरत का स्वरूप, जो कि संतों के दसवें द्वार यानी सुन्न में है, नज़र आवेगा, और फिर उस रूप से ब-दस्तूर शब्द की डोरी पकड़ के और ऊपर चढ़ के सुरत के भंडार में, जो कुल्ल-मालिक का धाम और असली सत्य पद है, पहुँचेगा और अमर और पूर्ण आनन्द को प्राप्त होगा।

९—इस धाम में सिवाय सत्त के, और कोई दूसरी चीज़ नहीं है, और वहाँ की रचना ऐन रूहानी यानी निर्मल चैतन्य की है और सदा एक-रस यानी महा आनन्द स्वरूप रहती है।

१०—इस देश के नीचे से प्रकृति यानी माया प्रगट हुई और नीचे २ उसका विस्तार ज़्यादा से ज़्यादा होता गया। और वहाँ रचना मिलौनी की हुई यानी उस सत्त पद की किरणी अथवा सुरत ने माया के मसाले से अनेक रूप पैदा किये। और जो कि माया का मसाला (जो असल में ग़ुबार रूप है) हमेशा रंग और एक-रूप नहीं रह सक्ता,